सत्यम् शिवम्

रचयिता

मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

सम्पादक

मुनिश्री विनयकुमारजी 'आलोक'

प्रकाशक

श्रीमती भंवरीदेवी सेठिया

सुजानगढ़ (राजस्थान)

प्राप्ति-स्थान

श्रीमती भंवरीदेवी से[illegible]

धर्मपत्नी श्री नेमीचन्दजी [illegible]

द्वारा—श्री हनुतमलजी तोलाराम[illegible]

सेठिया हाउस

सुजानगढ़ (राजस्थान)



प्रथम संस्करण

अक्टूबर १९६७



मूल्य एक रुपया



मुद्रक :

उद्योगशाला प्रेस,

किंग्सवे, दिल्ली–९

प्राक्कथन

सत्य शब्दातीत है। उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। जो व्यक्त किया जाता है, वह या तो सत्यांश है या सत्य से व्यतिरिक्त। सत्य अनुभव-सापेक्ष है। जो अनुभूत है, वह व्यक्त का परिधान नहीं पा सकता। जो देखती है, वह बोलती नहीं। जो बोलती है, वह देखती नहीं। इसीलिए दर्शन और वाणी का मेल नहीं हो पाता। व्यक्ति अधूरा रह जाता है। पूर्णता का वह दम्भ भर सकता है, पर तब तक वह पूर्ण नहीं है। सत्य को भी जब शब्दों का चोगा पहनाया जाता है, हम कह उठते हैं, हमने सत्य का साक्षात्कार कर लिया, पर यह उसके साथ आँखमिचौनी है। बच्चे बहुधा आँखमिचौनी खेलते हैं। थोड़ी-सी ओट में छुप कर आँख मूँद लेते हैं। उन्हें यह अनुभव हो जाता है, अब हमें कोई नहीं देखता। खेल आरम्भ हो जाता है। यही स्थिति बहुधा साधक की होती है। कुछ दिन आँखें मूँद कर आसन जमाया और प्रतीति करने लगते हैं 'हमने सत्य को पा लिया।" साधक-अवस्था में ऊपर उठ गये हैं। वहीं सत्य उनसे रूठ कर दूर भाग जाता है। फिर वास्तविकता को झुठलाने का प्रयत्न आरम्भ होता है। सत्य का मुख स्वर्ण, स्वार्थ आदि से पिहित हो जाता है।

जब सब कुछ भूलकर स्वयं में स्थित हुआ जाता है, सत्य स्वयं के परिपार्श्व में महतकदमी करता हुआ मिलता है।

सत्य को पाने की अत्यन्त आतुरता व्यक्ति को उससे दूर करती है, क्योंकि आतुरता व्यग्रता है और वह स्वभाव से किनारा कसती है।

सत्य की परिणति शिव है। वहां कुछ अवशेष नहीं है। क्रिया की परिसमाप्ति होकर अक्रिया मे परिणति है। कृत का नाश हो चुकने पर वहां अकृत का व्यापार है। केवल ज्ञातृ-भाव है। न विकास है और न ह्रास। न आगमन है और न निर्गमन। न प्रकाश है और न अन्धकार। न विजनता है और न सकीर्णता। विभाव नही है, केवल भाव है। उत्कर्ष और अपकर्ष का अभाव है। परिचय और अपरिचय की स्थिति ही समाप्त है।

सत्यमय होने के लिए आत्मा को, आत्मा के लिए, आत्मा के द्वारा, आत्मा में अधिष्ठित किया। अव्यक्त कुछ-कुछ व्यक्त हुआ। उसे शिव की ओर बढ़ना चाहिए था, पर वह शब्दों के घेराव में आ गया। प्रयत्न करने पर भी वह घेराव समाप्त नही हुआ। इस संघर्ष में सत्य शब्दो की पकड़ में आ गया। परिणामत· शब्द विजयी हो गये। 'सत्यम् शिवम्' उसी का परिणाम है।

अनुभूतियों ने जब-जब शब्दों का अनुगमन किया, कुछ पद्य बन गये। पद्य बनाने को मैं कभी उतावला नही हुआ और न कभी इस दिशा में प्रयत्न करना अपेक्षित ही माना। व्यवहार ने जब कभी ऐसा चाहा, कुछ बन गया। कुछ व्यक्तियों ने समय-समय पर चाहा, भजन लिखे जाये, पर यह

चाह से ऊपर की बात है। चाह में कृत्रिमता का भाव रहता है। मुझे यह पसंद नहीं लगता। इसलिए मेरी चाह भी भिन्न रही। फिर भी बिना प्रयत्न ही और अनायास ही किसी मंजिल पर अवश्य पहुँच गया हूँ। किन्तु यह मंजिल मुझे अभिप्रेत न थी, न है और न भविष्य में ही रहेगी। आत्म-तोष केवल इतना ही है कि शुद्ध स्थिति के गुरुत्वाकर्षण-मण्डल में मैं पहुँच गया हूँ। अब मुझे यही परिक्रमा करनी है। इन भावों को यदि आत्मसात कर सका तो अपने लिये, अपने द्वारा, अपने ही द्वार उद्घाटित होंगे। 'सत्यम् शिवम्' की भावना का यही उद्देश्य है।

१७ अगस्त, १९६७ —मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'
नागौर (राजस्थान)

अनुक्रम

· १

पैंसठ महापुरुषों की स्तवना

[तर्ज—जाने वो कैसे लोग थे जिनके]

प्रातः उठकर शुद्ध भाव मे जिनवर ध्यान धरु ।
तन-मन सब अर्पण कर उनसे ज्योति प्राप्त करु ।।

ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्म सोल्लास ।
श्री सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रीश्रेयास ।
वासुपूज्य, श्री विमलनाथ के पावन चरण पर ।।१।।

अनन्त, धर्म, जिन शान्ति, कुन्थु, अर, मल्लिनाथ भगवान् ।
मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व प्रभु, महावीर धृतिमान् ।
गौतम आदि ग्यारह गणधर का मैं नाम स्मरु ।।२।।

प्रभो सुधर्मा, जम्बू स्वामी, भद्रबाहु गणधार ।
स्थूलिभद्र, श्यामार्य, वज्र स्वामी मेरे आधार ।
उनका ले अवलम्बन भव-जलनिधि को शीघ्र तरु ।।३।।

धन्ना, शालिभद्र, ढढण ऋषि, धर्मरुचि अनगार ।
स्कन्दक, भरत, मेतार्य, बाहुबल, मुनिवर गजसुकुमाल ।
उनसे कर वरदान प्राप्त मैं भव-भय-पीर हरु ।।४।।

चन्दनबाला, राजिमती, कौशल्या, जनक-सुता ।
शिवा, सुन्दरी, सुलसा, ब्राह्मी, कुन्ती, द्रुपद-सुता ।
प्रभावती, दमयन्ती के गुण निज मे सदा भरु ।।५।।

मर्यादा पुरुषोत्तम भिक्षु, भारी, ऋषिवर प्राण।
जयाचार्य, मघ, माणक, डालिम, कालू, तुलसी त्राण।
अमी, भीम, शिव, कोदर से मैं पावन बोध वरूं ॥६॥

विघ्न-विनाशक मंगल-कारक जिनवर-गुरुवर-जाप।
हो तल्लीन "महेन्द्र" करूं मैं; हो जाऊं निष्पाप।
बढ़ूं साधना-पथ पर कष्टों से तो नहीं डरूं ॥७॥

२

[तर्ज—प्यारे पंछी नील गगन]

ऋषभ जिनेश्वर तारो ।
शरण पड़ा हूं प्रभो ! तुम्हारी भव से पार उतारो ।।

नरपुङ्गव नरश्रेष्ठ, अतः तुम ऋषभ वृषभ कहलाये ।
राजा प्रथम, प्रथम ही मुनिवर, प्रथमार्हत पद पाये ।
नतमस्तक जग है चरणों में, उसकी अरति निवारो ।।१।।

प्रभो ! तुम्हारे दिल में मेरा वास न है सम्भावित ।
हो यदि वास तुम्हारा तो मन मेरा हो आप्लावित ।
मेरे मलिन हृदय की ओर न दृष्टि प्रभो ! तुम डारो ।।२।।

ज्यों ही दृष्टि टिकेगी मुझ पर, त्यों ही विकृति हटेगी ।
होगी शुद्ध चेतना मेरी, शुभ आभा निखरेगी ।
जान भक्त चरणों का मुझको अपना विरद विचारो ।।३।।

अन्य देवता कोप-अनुग्रह में सब अतिशय भावित ।
उनमें मेरा तो न कभी कल्याण प्रभो ! सम्भावित ।
मुनि 'महेन्द्र' अपने भक्तों को नाथ ! न कभी विसारो ।।४।।

: ३ :

[तर्ज—सभापति आप मिले मतिवान]

अभय दो प्रभुवर पार्श्व जिनेश !
हे शिवदायक ! हे अभयंकर ! दूर करो सब क्लेश ।
पुरिसादाणी चिन्तामणि हो,
तिमिर-नाश-हित तुम दिनमणि हो,
जन-जन के हृदयेश ॥१॥
सकट में भी धैर्य न डोले,
द्वार विजय का साहस खोले,
दो यह वर करुणेश ॥२॥
कोई व्याधि न होती तन पर,
भूत-प्रेत की छाया न मन पर,
तेरा जहां निवेश ॥३॥
आत्मिक अनुशासन में रत हों,
भौतिकता से सहज विरत हों,
दो यह शक्ति विशेष ॥४॥
वाराणसी की पुण्य धरा पर,
अश्वसेन-वामा घर अवतर,
पावन किये प्रदेश ॥५॥
दिये कमठ ने भीषण परिषह,
आत्मलीन उनमें प्रतिपल रह,
तोड़े कर्म अशेष ॥६॥
पद्मावती चरणो में रत है,
श्री धरणेन्द्र "महेन्द्र" प्रणत हैं,
सारो काम हमेश ॥७॥

४

[तर्ज—सब के सितारे श्री श्री चरणों में]

निशला-दुलारे प्रभु वर्धमान स्वामी के,
चरण-कमल में प्राण चढाएँ ।
छोड राज्य-वैभव सारा, परिवार छोड कर,
ध्यान की सुन्दर लौ जलाई ।
बारह वर्ष तेरह पक्ष तन की सभाल छोड,
आत्मा की असली आभा है पाई ॥१॥
जाना सचेतन को तो जाना अचेतन भी,
नई धर्म की, की व्याख्या ।
मुखरित हुआ घोष शुद्ध अहिंसा का,
जानी जगत ने मैत्री की आस्था ॥२॥
तारा उदाई को तो तारा था अर्जुन,
रोहिणेय को भी तारा ।
मान बढाया तुमने पूणिये श्रावक का,
चन्दनबाला को दुख से उबारा ॥३॥
देव तुम्ही हो सबके, ध्येय तुम्ही हो,
गेय, श्रेय, प्रिय सब जग के ।
बिना तुम्हारे अभिधेय भी न बनता,
परम तुम्ही हो इस चेतन के खग के ॥४॥
श्रद्धा-सुमन शुभ चरणो मे अर्पित,
करके तृप्त सब हैं होते ।
भावना को सफल 'महेन्द्र' बनाकर,
पाप-ताप क्षण मे ही विगोते ॥५॥

: ५ :

[तर्ज—पाटी वरतो]

द्रष्टा-भाव बढ़े जीवन में,
(तो) सहजानन्द मिले क्षण-क्षण में ।
सार साधना का यह उत्तम ।

महावीर भगवान् का, हाँ,
वर्धमान भगवान् का ।
सारा जग आभारी ॥१॥

श्रद्धा का अपने पर होना,
पर-भावों को सहज विगोना ।
दुर्लभतम है धर्म-मर्म यह ॥२॥

आत्मा की स्मृति रहे प्रतिक्षण,
नगरवास हो चाहे कानन ।
विस्मृति का हो विलय; घोष यह ॥३॥

विनय सहज गुण है आत्मा का,
जिसमें अंकन परमात्मा का ।
फिर क्यों भेद-भाव रह पाये ॥४॥

शून्य विकल्प-वितर्क भाव से,
होकर निखरे शुभ स्वभाव से ।
"मुनि महेन्द्र" यह स्वर्णिम पथ है॥५॥

. ६

[तर्ज—हरि गुण गाय ले रे]

वीर की वाणी पर, हो हम सब बलिदान।
वीर की वाणी पर, हो हम सब कुर्बाण ।
उद्यत यदि हम हो रहे हैं करने निज कल्याण ॥

भाग्य भरोसे छोडकर हम क्यो खोये निज सत्त्व ।
पुरुषार्थी बन साधना मे पहचानें शुभ तत्त्व ॥१॥

किन्तु क्रिया की बहुलता का फैल न पाये जाल ।
छुप जाती जिसमे सहज ही शुभ चिन्तन की लाल ॥२॥

सहनशीलता का दिखायें अन्युत्कट आदर्श ।
सहे सदा ही अन्य को आ पाये ना आमर्ष ॥३॥

सुख-दुःख मे माध्यस्थ होकर रहे स्वय मे लीन ।
कभी न फूलें हर्ष मे हम, हो न कष्ट मे दीन ॥४॥

हम सब की शुभ साधना के हैं आधार जिनेन्द्र ।
तन-मन अर्पण कर चरण मे निखरें सदा 'महेन्द्र' ॥५॥

: ७ :

[तर्ज—माढ]

गौतम गणधर धीर, भव-सागर से तारो जी ।
निर्मल गंगा-नीर, सारी विपदा टारो जी ।
विपदा टारो सारे जग की, छा जाये आनन्द ॥
मैं हूँ भक्त तुम्हारा प्यारा, तुम मेरे भगवान् ।
होकर लीन चरण में प्रतिपल, ध्याऊँ निश्चल ध्यान ॥१॥
मेरे जैसे भक्त तुम्हारे होंगे नाथ ! अनेक ।
पर मेरे तो रोम-रोम में छाये तुम ही एक ॥२॥

लब्धि-पुञ्ज पावन चरणों में बनकर रहता दास ।
सर्व सिद्धियों और सफलताओं के हो आवास ॥३॥

वीर जिनेश्वर के थे तुम ही अन्तेवासी शिष्य ।
वे स्मृतियाँ सरसा मैं कर पाऊँ निर्बाध भविष्य ॥४॥

मन चिन्तित होते हैं सारे, जिनके तुम हो इष्ट ।
शीघ्र "महेन्द्र" बढ़ेगा अपने पथ पर श्रद्धानिष्ठ ॥५॥

८

[तर्ज—उठ जाग मुसाफिर भोर भई]

मर्यादा पुरुषोत्तम सीतापति पूज्य रामकी जय हो जय।
दशरथ-नन्दन, लक्ष्मण-अग्रज रघुकुल-ललाम की जय हो जय ॥

लाखो नर ध्यान लगाते हैं, तन्मय होकर गुण गाते हैं।
प्रतिदिन सब रटन लगाते हैं, नयनाभिराम की जय हो जय ॥

पा पितृप्रवर का अनुशासन, वन चले, छोड जो सिंहासन।
उन निर्विकार निर्मोह सनातन परमधाम की जय हो जय ॥

लघु बन्धव को जो प्यार दिया, जनता को जो आधार दिया।
सब जग का है उद्धार किया, उन विश्वनाम की ज यहो जय ॥

सुग्रीव सखा को मुक्त किया, विभीषण को था राज्य दिया।
हनुमान भक्त को धन्य किया, साकेत-श्याम की जय हो जय ॥

उन्मूलन कर अन्यायो का, सवर्धन करके न्यायो का।
जो बने कीर्ति के अधिकारी, उन मोक्ष-धाम की जय हो जय ॥

अशरण के शरण विश्व-बन्धु, जन-जन- श्रद्धा के केन्द्र बिन्दु।
अध्यात्म-शक्ति के स्रोत, तपोमय राम-नाम की जय हो जय ॥

श्रद्धा-सुमनो का उपढौकन, चरणो मे अर्पित जीवन-धन।
स्वीकार 'महेन्द्र' करो, गाऊँ प्रतियाम राम की जय हो जय ॥

: ६ :

[तर्ज—झूठी-झूठी दुनिया की प्रीत है]

भन्ते ! करता शत-शत अभिवन्दन,
श्रद्धा कुसुमों से वन्दन।

पतितोद्धारक सच्चे भगवान·····हो !
हो स्वामी नयनों के तारे तुम महाप्राण हो।

लोक-प्रकाशक धर्म-उजागर तीर्थंकर विज्ञानी,
क्षमाश्रमण गंभीर सिन्धुवत् निर्मल आत्मध्यानी।
भन्ते ! सूरज से भी तेजस्वी,
रजनीपति सम वर्चस्वी,
असहायों के तुम ही तो त्राण···हो ! ॥१॥

धूत रजोमल क्षीण जरामर लोकोत्तम अविकारी—
सिद्ध; निरामय आत्म-सुधामय अर्हन् केवलधारी।
प्रतिनिधि उनके हैं गण अधिनेता,
हैं उपाध्याय मद-जेता,
मुनिवर का स्मरण परम सोपान···हो ॥२॥

नर-सुर-पूजित ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन सारे।
सुमति, पद्मप्रभ, श्री सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ प्राण-पियारे।
सुविधि, शीतल, श्रेयांस जिनेश्वर,
श्री वासुपूज्य, विमलेश्वर,
मानवता के सच्चे सम्मान···हो ॥३॥

अनन्त, धर्म, जिन शान्ति, कुन्थु, अर, मल्ली, मुव्रत स्वामी।
नमि, नेमि, धरणेन्द्र सुसेवित पारस अन्तर्यामी॥
त्रिशलानन्दन हैं भाग्य विधाता,
तीर्थंकर प्रभुवर त्राता,
मेरी वीणा की सुमधुर तान हो ॥४
विहरमान जो बीस सीमधर आदि, देव हैं मेरे।
ग्यारह गणधर गौतम प्रभृति निज-पर-आत्म-उजेरे॥
अर्हद्-वाणी के हैं उद्गाता,
त्रिपदी के पहले स्नाता,
जिन पर होता सात्त्विक अभिमान हो ॥५॥
धूमिल आवत स्वार्थ-रेणु में महावीर का शासन—
हुआ जा रहा था, तब आये दीपा माँ के नन्दन।
शिथिलाचारों की जड़ें कुरेदीं,
स्वाध्यायी आत्म-प्रवेदी,
पाया था अक्षय बोधि-निधान हो ॥६॥
भारिमाल, ऋषिराय, जीत, मघ, माणक, डालिम, कालू।
तुलसी महामहिम श्रद्धास्पद शान्त सुधा-स्पृहयालु॥
गिरती मानवता के उन्नायक,
जन-जन के भाग्य विधायक,
अविरागी रहते स्वर्ण-विहान हो ॥७॥
विघ्न-विनाशक मंगलमय आरोग्य बोधि के दाता।
मन-समाधि के स्रष्टा परमेष्ठी पंचक हैं त्राता।
पाता उनकी कृपया ही सिद्धि,
'मुनि महेन्द्र' नव ऋद्धि,
होता प्रति चरण सदा कल्याण हो ॥८॥

: १० :

[तर्ज—जै बोलो महावीर स्वामी की]

जय बोलो भिक्षु प्रभुवर की
प्रभुवर की जय गुरुवर की
श्री तेरापन्थ अधीश्वर की।

वह पुरुषसिंह, पुरुषोत्तम था
नर पुण्डरीक लोकोत्तम था
हम प्रणति करे उस मतिधर की ॥१॥

वह गन्ध गजेन्द्र, सुरेन्द्र-समान
वह तीर्थकर था, पुरुष-प्रधान
अनुगति हो सब-पुरन्दर की ॥२॥

स्वयंबुद्ध था, बोधि-निधान
भाग्य-विधाता था भगवान
हम भक्ति करें गण-दिनकर की ॥३॥

दृढ़तर संगठन-विधान किया
धार्मिक जग को आह्वान किया
कर स्मृतियाँ प्राक्तन व्यतिकर की ॥४॥

वह लोहपुरुष था शासन में
पर कोमल आत्म-विकासन में
जय हो 'महेन्द्र' उस श्रीधर की ॥५॥

११

[तर्ज—दो दिल कहाँ से लाऊँ]

श्री भिक्षु के चरण मे उपहार नव सजाऊँ।
नैवेद्य भक्ति का ले मैं भाव मे चढाऊँ॥

मेरे मन मे मूर्ति तेरी भगवन् ! सजी हुई है।
श्रद्धा-सुमन चढाकर मैं अपनी साध पुराऊँ॥१॥

वीणा-विहीन कर हैं, नूपुर भी ना चरण मे।
बिखरे विचार दिल के, उनमे ही ध्यान लगाऊँ॥२॥

साधना की वलि-वेदी पर, तुमने प्राण थे चढाये।
शुभ केन्द्र मान उसको सस्कार मैं जगाऊँ॥३॥

आदर्श जो तुम्हारे जग मे सदा समाये।
प्रतिवर्ष हृप से फिर तेरा श्राद्ध मनाऊँ॥४॥

: १२ :

[तर्ज—कितना बदल गया इन्सान]

जय-जय भिक्षु भिक्षु भगवान ।
युगाधार युगपुरुष तुम्हारा मंगलमय अभिधान ।। जय०।।

तुमने नव आलोक बिखेरा, बीती रजनी हुआ सवेरा,
पथ बीहड़ था घना अँधेरा, फिर भी गमन रुका नहीं तेरा
किंकर्तव्यमूढ मानव ने पाया सच्चा ज्ञान ।।१।।

शुद्धाचार-विचार-विमलता में जीवन की भरी सफलता,
श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र-प्रबलता से सात्विक रस स्रोत निकलता,
धर्म-कर्म की गति समन्वित हो, यह था आह्वान ।।२।।

जब लग जग की पूर्ण व्यवस्था, मानव-मन की स्वस्थ अवस्था,
जब लग रवि-शशि-गण की संस्था में व्यापक है गति अनवस्था,
जनता को आलोक दिखाये तेरापंथ महान् ।।३।।

१३

[तर्ज—इतिहास गा रहा है]

भगवन्! तुम्हारी हम सब यह आरती सजायें।
श्रद्धा के फूल दो-दो श्रीचरण मे चढायें॥

क्यो शत्रु की उपेक्षा, क्यो मित्र की अपेक्षा।
माध्यस्थ्य वृत्ति को हम निज शीश पर चढायें॥१॥

अनुराग क्यो किसी से, क्यो द्वेष भी किसी से।
समदर्शिता सुखद यह जीवन मे फैल जाये॥२॥

क्यो बाह्य-भावनाएँ हमको कभी सतायें।
बस, आत्म-भावना के नव दीप हम जलायें॥३॥

शुभ देन हो तुम्हारी, थाती सदा हमारी।
जिसके सहारे से हम यह सुप्त जग जगायें॥४॥

: १४ :

[तर्ज—जैसा करना वैसा भरना]

शासन-भक्त प्रभो ! हम तेरे तन-मन अर्पण चरणों में।
लो लाखों अभिवन्दन विभुवर, भक्त खड़े हम शरणों में ॥

गूँज उठा जय-घोष तुम्हारा दिग्-दिगन्त के कर्णों में।
लिखी गई हैं यश-गाथाएँ प्रकृति के नव पर्णों में ॥१॥

देव ! तुम्हारी सहज साधना व्यक्त करे किन वर्णों में।
मिली न अब तक ऐसी सुन्दर पौराणिक उद्धरणों में ॥२॥

संघ-व्यवस्था नीति-कुशलता रूप रुचिर आभरणों में।
पाते हैं प्रतिबिम्ब भिक्षु का जैसे निर्मल झरणों में ॥३॥

नैतिकता की सुर-सरिता भौतिकता के आवरणों में।
छुपी जा रही थी, उसका उद्धार किया ले शरणों में ॥४॥

अनुशासन आचार-कुशलता के सुन्दर अवतरणों में।
किया संघ आवेष्टित तुमने शुद्ध साध्य शुभ करणों में ॥५॥

लीन रहेंगे देव ! तुम्हारे सैद्धान्तिक उपकरणों में।
विजय वरो तुम मुनि 'महेन्द्र' की विज्ञप्ति श्रीचरणों में ॥६॥

१५

[तर्ज—[illegible] में किसी के [illegible]]

प्रभो ! [illegible] में तुम्हारी [illegible] ले देना ।
शीघ्र ही मोक्ष मंदिर में मुझे कृपया बिठा देना ॥

[illegible] है जो [illegible] की [illegible] अग्नि [illegible] मन में ।
[illegible] निष्काम [illegible] देना ॥१॥

[illegible] के पथ में चलना जो [illegible] दिव्य जीवन है ।
[illegible] की नीति है भारी ! शीघ्र ऊँचा उठा देना ॥२॥

जगत में [illegible] तुम्हारे साथ मैं जोड़ूँ ।
[illegible] प्रभुवर ! [illegible] देना ॥३॥

कहीं देखा कहीं देखा, कहीं भी [illegible] ना पाया ।
[illegible] में तुम्हारी [illegible] उठा लेना ॥४॥

[illegible] निर्मल [illegible] ज्यों ।
दयानिधि [illegible] ऐसा [illegible] देना ॥५॥

: १६ :

[तर्ज—ऋषिराज! तुम्हारे चरणों में]

साधना में लीन हो उन्मेष पाएँ हम,
ज्ञान की लौ जलाएँ हम।

चेतन की उपलब्धि-हेतु हम पल-पल कदम बढ़ाएं।
संकल्पों का ज्वार रोक कर मन को शान्त बनाएं॥
ऊँचे इस साधन को सारे आजमाएं हम ॥१॥

इन्द्रिय-विषय-विकार-भावना मन को बोझिल करती।
सहज अवस्था को दूषित कर चेतन-सुषमा हरती॥
उद्यम पूर्वक इस प्रवृत्ति पर रोक लगाएं हम ॥२॥

क्षण-क्षण का संधान साधना में आवश्यक होता।
रह कर लीन आत्म-भावों में साधक कलमष धोता॥
महावीर की इस वाणी को शीश चढ़ाएं हम ॥३॥

बीत गया जो समय, नही वह तो वापस आएगा।
भूत नहीं पर वर्तमान ही रंग नया लाएगा॥
प्रकृति के इस शाश्वत क्रम को क्यों भूलाएं हम ॥४॥

देखें, सुनें सदा चेतन को, आस्वादन चेतन का।
सूंघे क्षण-क्षण हम चेतन को, हो स्पर्शन चेतन का॥
मुनि 'महेन्द्र' इस विधि से ही उस पार जाएं हम ॥५॥

१७

[तर्ज—प्यासे पंछी नील गगन में]

अपना रूप निहारो

दर्पण छोड़, मूँद कर आँख निज गुण सदा सँभारो ॥

पर-चिन्ता में रहा भटकता निज को भूल गया तू ।
पर की अस्थिर कृपा प्राप्त कर मन में फूल गया तू ।
पारख बोधि, लगे दूषित ऐनक को शीघ्र उतारो ॥१॥

जिसने निज को जान लिया, उसने जग जान लिया है ।
निज को भूल जगत को जाना, उसने दम्भ किया है ।
छोड़ दम्भ की इस प्रवृत्ति को सहज सरलता धारो ॥२॥

जो सविकल्प ज्ञान होता है, वह तो सदा अधूरा ।
निर्विकल्प-संताप-शून्य ही, एक ज्ञान है पूरा ।
संकल्पों के अवरोहण-आरोहण को भी टारो ॥३॥

जहाँ चातुरी दिखलाने को मानव उद्यत होता ।
वहाँ चेतना की मौलिकता को वह तो है खोता ।
सहज भाव में रमण करो, कृत्रिमता शीघ्र निवारो ॥४॥

यश-लिप्सा की ओर चेतना जो नित झूल रही है ।
अहंवृत्ति दुर्भाव हृदय में प्रतिबिम्बित कर रही है ।
मुनि 'महेन्द्र' जागृत होकर के पहले निज को तारो ॥५॥

: १८ :

[तर्ज—तुम्हीं मेरे मन्दिर तुम्हीं मेरी पूजा]

मुझे एक आत्मा का सही ज्ञान हो बस,
यही कामना है, यही कामना है।
नही अन्य भावों की पहचान हो बस,
यही कामना है, यही कामना है ।।
जब तक विभावों के पीछे लगा था,
मैंने स्वयं को प्रतिपल ठगा था।
नही मेरा मेरे से व्यवधान हो बस,
यही कामना है, यही कामना है ।।१।।
ज्यों-ज्यों विभावों को पढ़ता गया था,
त्यों-त्यों अहं भी बढ़ता गया था।
अब शीघ्र उसका अवसान हो बस,
यही कामना है, यही कामना है ।।२।।
ज्यों-ज्यों बढ़ाया परिचय जगत का,
टूटा था नाता त्यों-त्यों ही सत का।
अब चेतना का अवधान हो बस,
यही कामना है, यही कामना है ।।३।।
उत्कर्ष पाकर रहा फूलता मैं,
चित् की महत्ता को रहा भूलता मैं।
'महेन्द्र' शुभ वह सन्धान हो बस,
यही कामना है, यही कामना है ।।४।।

१९.

[तर्ज—छटी नीम के नीचे]

आत्म-रूप को पाना ही बस सार है।
इसके बिना जो पाया कुछ भी वह तो सब निस्सार है ॥

करते-करते बीता सारा समय हाथ क्या कुछ आया ?
करना छोड़ेंगे तब अनुभव होगा, सब कुछ है पाया।
क्रिया-काण्ड का बड़ा जटिल प्राकार है ॥१॥

सम्प्रदाय का मोह सत्य को सदा दबाता है आया।
इसीलिये छा जाती नर पर अभिनिवेश की है छाया।
फटा न अब तक ममता का सहकार है ॥२॥

युग-युग में होती आई है नई धर्म की परिभाषा।
उलझी जिसमें रह जाती है अन्तरतम की अभिलाषा।
चेतन बन पाया न जरा अविकार है ॥३॥

उपचारों के सुदृढ़ वलय में बद्ध चेतना रोती है।
किंतु इसी में विवश जिन्दगी पूरी सबकी होती है।
'मुनि महेन्द्र' सब बन्ध-हेतु व्यवहार है ॥४॥

: २० :

[तर्ज—नगरी-नगरी द्वारे-द्वारे]

है यही संकल्प सबका साधना की लौ जले।
चेतना का बोध हो, अज्ञान की छाया टले।।

ममता के आवर्त्त बीच फंस चक्कर खूब लगाये हैं।
इसीलिये समता के कण आत्मा को छू नहीं पाये हैं।
मैत्री और प्रमोद भावना के पथ पर सब बढ़े चलें।।१।।

रहे धर्म से अनुप्राणित ही, जीवन का प्रत्येक पल।
छा पाये जिससे न कषायों के काले-काले बादल।
और रहे न कभी अन्धेरा, आत्मा के शुभ दीप-तले।।२।।

सादा जीवन, शुभ विचार ही जीवन का शृंगार है।
सहनशीलता, दूरदर्शिता ही सुदृढ आधार है।
'मुनि महेन्द्र' सब में जागृति के शुभ संस्कार सदा फलें।।३।।

२१ :

[तज—मदिर मे काई ढूढती फिरे]

साधो ! हो अपने मे लीन, निहारो असली आत्म-रूप को ।
साधो ! कर आश्रव को क्षीण, निहारो असली आतमरूप को ।

जहाँ अनुबन्ध योग का होता वहाँ तो मुक्ति नहीं है ।
शुभ-अशुभ दोनों बेडी, यह प्रभु ने बात कही है ॥१॥

भटकत गहन भवाब्धि बीच यो समय असीमित बीता ।
किया बहुत पर रहा अभी तक आतमा का घट रीता ॥२॥

यदि न हुई निवृत्ति, प्रवृत्ति न फलदायक हो सकती ।
करो निवर्तन बहिर् भाव का, प्रकटे चिन्मय ज्योति ॥३॥

अप्रमत्त की क्रिया, अक्रिया की निमित्त बन जाती ।
अमित शक्ति क्रमश जागृत कर रग अनूठा लाती ॥४॥

कर्मो का आत्मा पर लेप लगा तुम्बी की नाई ।
'मुनि महेन्द्र' सुस्थिर बन जाओ, हट जाये परछाई ॥५॥

: २२ :

[तर्ज—मंदिर में कांई ढूंढ़तो फिरै]

तन्मय होकर के साधना करो, छोड़ो मन के विषय-विकार ।

एक[1] जीतने पर पांचो पर विजय सुनिश्चित होगी ।
क्रमशः दश; फिर जीत विश्व को वन जाओ सब योगी ॥१॥

आत्मा[2] ही पापों की कर्ता, आत्मा ही संहर्ता ।
आत्मा मित्र-अमित्र उभय है, आत्मा ही है भर्ता ॥२॥

होकर आत्म-स्थित[3] इन्द्रिय से अपनी रक्षा करना ।
रक्षित आत्मा सुख का साधन, अरक्षित दुःख-झरना ॥३॥

मन में कुछ, वाणी में कुछ, यह भेद न रहने पाये ।
'मुनि महेन्द्र' कथनी-करनी की खाई सब पट जाये ॥४॥

---

१. एगे जिये जिया पंच, पंचे जिये जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ताण सव्वे सत्तू जिणामहं ॥

२. अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुपट्ठिय सुपट्ठिय ॥

३. अप्पा हु खलु सययं रक्खियव्वो, सव्विदियेहिं सुसमाहिएहिं ।
अरक्खियो जाइपहं उवेइ, सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चई ॥

: २३

[तर्ज—नाग कहीं जा डसियो रे]

क्षण भी प्रमाद मत करना रे, सम्भल कर चलना रे।
डग फूंक-फूंक कर भरना रे, जग केवल छलना रे॥
एक पलक का निर्णय नर को नभ में है पहुंचाता।
एक पलक का निर्णय त्यों ही महारौरव दिखलाता॥
यह सत्य तत्त्व न विसरना रे ॥१॥

अतुल शक्ति का स्रोत उमड़ता पंच भूत के तन में।
चिन्तन की अक्षय निधि रक्षित मानव! तेरे मन में।
है ज्ञान-कला का झरना रे ॥२॥

कहीं न उसका दुरुपयोग हो, सावधान हो रहना।
"उट्ठिये नो पमायए" इस रस धारा में बहना।
यदि रत्नत्रय तुझको वरना रे ॥३॥

नश्वर तन पर घात भयानक प्रतिपल चोटें करना।
हर-एक घर आत्म-गुणों को है प्रमाद कर हरना।
वृद्धिगत करता चलना रे ॥४॥

अप्रमत्त बन शिक्षित हय, भारण्ड विहग बन विचरो।
'मुनि महेन्द्र' अब आत्म-निलय में तन्मय होकर जागो।
मिट जाये दुरित-रचना रे ॥५॥

: २४ :

[तर्ज—निजाम हैदराबाद]

यह स्वार्थ का पुतला मनुज है इसकी क्या बतलायें।
लड़ाकर तिड़कमबाजियां दुनिया को मूर्ख बनाये॥
किन्तु वास्तविकता पर परदा कब तक रहने पायेगा।
आखिर दूध और पानी का न्याय स्वयं हो जायेगा॥
इसको न कभी भुलायें॥१॥

अपने लिए दूसरों का बलिदान पूर्णतः चाहता है।
पर-हित में तो योग तनिक-सा करते भी सकुचाता है।
औरों को बुद्धु बनाये॥२॥

जिस डाली पर बैठ, मधुर फल खाता; उसको काटता।
स्वार्थों के गहराते तम से संस्कारों को पाटता।
अपना उल्लू सहलाये॥३॥

अपने महल बनाने हित घर पर के सहज उजाड़ता।
छक्के-पंजे लड़ा-लड़ा औरों को शीघ्र पछाड़ता।
नीचे से ही खिसकाये॥४॥

अपने लिए चाह है जैसी, वैसा ही व्यवहार हो।
समता औ' माध्यस्थ भावना का मंजुल उपहार हो।
यह सत् शिक्षा अपनायें॥५॥

२५

[तर्ज—जय बोलो महावीर स्वामी की]

मानव-जीवन का मान करो।
अपने का ही आह्वान करो।
प्रतिपल निश्चय विधान करो॥
जो समय बीतता जाता है।
वह पुन लौट कर आता है।
क्षण-क्षण का शुभ सन्धान करो ॥१॥
आपा-धापी से दूर रहो।
निन्दा-चुगली से दूर रहो।
गुण चुन-चुन आत्म-निधान करो ॥२॥
मैं भिन्न-भिन्न गति में आया हूँ।
सुकृत-दुष्कृत [illegible] पाया हूँ।
उस परम तत्त्व की [illegible] करो ॥३॥
इस जीवन का लेखा-जोखा।
समुचित करने का है मौका।
[illegible] हर [illegible] करो ॥४॥
[illegible] करते।
[illegible] करते।
[illegible] करो ॥५॥

: २८ :

[तर्ज—उठ जाग मुसाफिर भोर भई]

तीर्थंकर नाम कर्म-अर्जन के वीस निमित्त वताये हैं।
हाँ वीस निमित्त वताये है, आगमकारों ने गाये हैं ॥
अरिहन्त[1], सिद्ध[2], प्रवचन-अर्चन[3],
गुरु[4], स्थविर[5], वहुश्रुत[6] का वन्दन,
कर घोर तपस्वी[7] की स्तवना निज को इस पद तक लाये हैं ॥
तत्त्वों का पुनः-पुन चिन्तन,[8] सम्यक्त्व रत्न[9] का शुभ वर्तन,
कर विनय[10] धर्म का अनुशीलन, सर्वोत्तम पद नर पाये हैं ॥
षड् आवश्यक[11] विधि से करते, नही ब्रह्मचर्य[12] से है टलते,
वैराग्य[13] भावना से भावित होना कारण वतलाये हैं ॥
वाह्याभ्यन्तर तप[14] का करना, शुभ पात्रदान[15] देते रहना,
गुरु, ग्लान, तपस्वी, शैक्ष[16], स्थविर, सार्धमिक की सेवाये है ॥
हो समाधिस्थ[17] पल-पल रहते, अभ्यास-ज्ञान[18] का हैं करते,
श्रुत[19]-भक्ति और प्रवचन[20]-महिमा, ये हेतु मुख्य कहलाये हैं ॥
इन बीसों का हो आराधन, या कुछ का भी हो शुभ साधन,
तीर्थंकर पद उपयुक्त पुण्य संचित होते ही आये हैं ॥
तीर्थंकर पद की अभिलाषा, है केवल वहिर्मुखी आशा,
कर दूर "महेन्द्र" इसे सहसा साधक हो सिद्ध कहाये हैं ॥

२६

[तर्ज—म्हारा छैल भवर का बागां मे]

ओ भारतवासी ! सत्य अहिंसा व्रत सारे अपनाओ ।
भोगवाद मे मग्न हो दुनियाँ डूब रही,
नाना वाद-विवाद से है वह ऊब रही,
अब त्याग-तपोबल के रास्ते मे अपने पैर बढाओ ॥१॥
भाग-रोग मे शान्ति के अकुर नही होते,
कीचड से नही स्वच्छता क्यो यह वस्त्र बिगोते,
सत्य नीर से गन्दापन सब धोकर दूर हटाओ ॥२॥
मानवता का मूल यहाँ है नही पनप रहा,
दानवता का भूत भी नगा नाच रहा,
नैतिकता फिर से जीवित हो, ऐसा कदम उठाओ ॥३॥

: ३० :

[तर्ज—कितना बदल गया इन्सान]

रखना मानवता का ध्यान ।
मतदाता बन नहीं बनाना पैसे को भगवान ।।
भारत-भू पर प्रजातंत्र का, श्रीगणेश है आत्म-तन्त्र का,
लोप हुआ है राजतन्त्र का, छाये घन ना स्वार्थ-तंत्र का,
अत. जालसाजी से कभी न करना है मतदान ।।१।।
प्रजातंत्र की रीढ़ नीति है, जन-जन का सम्बन्ध प्रीति है,
हृदय-सरलता सहज वृत्ति है, भारत की प्राचीन रीति है,
अत: भरोसे झूठे देकर मत करना मतदान ।।२।।
भारत के बच्चे-बूढ़े सब, नीति निपुण होंगे अविकल जब,
स्वर्ग धरा पर उतरेगा तब, सुख पायेंगे नर-नारी सब,
'मुनि महेन्द्र' इस पुण्य धरा का विश्व करेगा मान ।।३।।

: ३१ :

[तर्ज—सायीडा रामू रे]

मत छोडो माया रे, यह मैत्री बिगोने वाली।
निज आत्म-गुणों से है यह वैर बढाने वाली॥
माया मे पडकर के कहो किसने सत्त्व न खोया।
सौजन्य-भाव हित है, यह एक हलाहल प्याली॥१॥

ज्यो क्षय के कीटाणु, तन को जर्जर हैं करते।
त्यो माया डाकिन रे, है प्रेम गमाने वाली॥२॥

हां, एक वार तो रे, कुछ सुख की सासे लेना।
पर आखिर मे तो यह है दुख ही देने वाली॥३॥

: ३२ :

[म्हारा छेल भंवर का बागाँ में]

ए मानव ! उठ तू शील सुधारस पीले तन्मय होकर ।

विश्व थपेड़े खा रहा, इत-उत हो उद्भ्रान्त,
निजाचार को छोड़कर, वनता है उत्क्लान्त,
वह बढ़ना चाहता है अपनी सारी पूंजी को खोकर ॥१॥

ब्रह्मचारी जो पूर्ण है या पत्नीव्रत धार,
रहते निर्मल चित्त से अपने मन को मार,
उनके सन्मुख देव-इन्द्र भी रहते जैसे नौकर ॥२॥

चन्दनवाला, द्रौपदी, सीता सती पवित्र,
सेठ सुदर्शन की बनी घटना अती विचित्र,
श्रोत्र-परम्पर उनका यश अब बहता सम्मुख होकर ॥३॥

यह शारीरिक-क्रान्ति का, बल का है भण्डार,
मानवता का मूल है आत्मिक गुण-आगार,
विकसित होती सदा चेतना एक इसी में होकर ॥४॥

दुष्कर दुष्कर है सदा महादुष्कर यह कार्य,
इसकी उत्कट साधना कर सकता है आर्य,
मुनि 'महेन्द्र' हो जा पवित्र तू सारे कल्मष धोकर ॥५॥

: ३३ ·

तू जाग रे ! सुज्ञानी यह काल आ रहा है।
अपनी यह हरकतों से जग को निगल रहा है॥
घुसे लुटेरे तेरे घर मे बहुत बडे हैं।
तू देख-देख जल्दी धन तेरा जा रहा है॥१॥
तू जानता है जग मे बढता मैं जा रहा हूँ।
पर ह्रास तेरा दिन-दिन यह काल कर रहा है॥२॥
बडे-बडे थे राजा योगी विरागी साधु।
सब हैं चले गये तू क्यों मस्त बन रहा है॥३॥
परलोक जब चलेगा, वहाँ पुण्य क्या रखेगा।
यहाँ पर न कुछ कमा कर तू खर्च कर रहा है॥४॥
अनमोल पल जो जाते, वे लौट कर न आते।
तन्मय 'महेन्द्र' प्रभु की शिक्षा सुना रहा है॥५॥

: ३४ :

[तर्ज—हरि गुण गाय लै रे]

पर्व शुभ आया है, संवत्सर का आज।
धर्म-रंग छाया है, पुलकित सकल समाज।
पर्व कहाते अन्य तो यह पर्वों का अधिराज॥

बच्चों बूढ़ों के जगा है मन में नव उल्लास।
युवकों की बाछें खिलीं, हुआ धार्मिक दृढ विश्वास॥१॥

चूल्हे चाकी की हुई है घर-घर में हड़ताल।
खिले ठिकाने धर्म की है जागरणा सुविशाल॥२॥

भदियों कदियों की हुई सदियों से आगे दौड़।
पौरुष का हैं दे रहे सब परिचय तो बेजोड़॥३॥

आत्मालोकन के लिये हो पल-पल का उपयोग।
छूट जायेंगे सहज ही में सब संयोग-वियोग॥४॥

पर्वाधन के लिये हो आत्मा ही शुभ केन्द्र।
शल्य-रहित हो सर्वथा ही निखरे 'मुनि महेन्द्र'॥५॥

३५ .

[तर्ज—भीखण जी स्वामी भारी मर्यादा]

पर्यूषण आया ज्योति जगाओ 'धर्म-ध्यान की।
अन्तर के अज्ञान का जिससे हो जाये अवसान रे ॥
आत्मा से देखो सतत अविकारी आत्म-स्वरूप रे।
छोड कषाय-प्रमाद को बन जाना है चिद्रूप रे ॥
ध्यान, जाप, स्वाध्याय से होकर तन्मय हर बार रे।
भावो बारह भावना जिससे बहे उपशम रस-धार रे ॥२॥
रात्री भोजन छोडकर, करो सचित द्रव्य-परिहार रे।
चौपड ताश खेलो नहीं, मत देखो सिनेमा द्वार रे ॥३॥
ब्रह्मचर्य की साधना, करो होकर के अविकार रे।
पालो अणुव्रत प्रेम से शुद्ध जीवन का उपहार रे ॥४॥
पर्व कहलाते अन्य तो यह पर्वो का अधिराज रे।
'मुनि महेन्द्र' श्री भिक्षु के शासन पर युग को नाज रे ॥५॥

सत्य साधना दिवस के उपलक्ष में

: ३६ :

[तर्ज—दिल लूटने वाले जादूगर]

है सत्य रीढ़ जीवन की इसको इधर-उधर मत होने दो ।
शुभ चिन्तन का पोषण दे इसमें संस्कारों को बोने दो ॥
सत्य लोक में सारभूत[1] है; महावीर की यह वाणी ।
सत्य स्वयं परमात्म[2] रूप बन करता सबकी अगवानी ।
पहचानो आत्मा[3] से इसको; इसमें प्रतिभा[4] को बहने दो ॥१॥
है आवश्यक क्रोध,[5] लोभ, भय, हास्य-वृत्तियों का वर्जन ।
सत् स्वाध्याय अपेक्षित इसमें जिससे होता शुभ वर्तन ।
कटु-कर्कश[6], हिंसक सत्य वचन से वर्जित जीवन रहने दो ॥२॥

---

१. सच्चं लोगम्मि सारभूयं
२. सच्चं खु भगवं
३. अप्पणा सच्चमेसिज्जा
४. सच्चंमि धिइं कुव्वहा
५. से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा
६. तहेव फरुसा भासा गुरु भूओवघायिणी ।
सच्चा वि सा न वत्तव्वा जओ पावस्स आगमो ॥

आत्मार्थी[1] दृष्ट और परिमित सन्देह रहित भाषा बोले।
परिपूर्ण स्पष्ट औ' अनुभूत होने पर ही मुंह को खोले।
उद्वेग और वाचालवृत्ति का दोष न उस पर लगने दो ॥३॥
सत्य-साधना की अन्तिम उपलब्धि स्वयं का दर्शन है।
वीतराग हो, कर्मरहित हो पंचम गति का स्पर्शन है।
है अनृत तो कल्मष, उसका मत भार स्वयं को ढोने दो ॥४॥

---

७ दिट्ठं मिअं असंदिद्धं पडिपुण्णं विअं जिअं।
अयंपिरं मणुव्विग्गं भासं निसिर अत्तवं ॥

संयम साधना दिवस के उपलक्ष में

: ३७ :

[तर्ज—कोटि-कोटि कण्ठों से गाएं]

संयम है जीवन की उन्नति का सीधा सोपान रे।
जिसके माध्यम से करता नर शान्त-सुधा का पान रे ॥

है विस्तार वृत्तियों का घातक आगम बतलाता।
उनका ही संकोच साधना में है अलख जगाता।
है इसका ज्ञापक ज्ञाता का दो कच्छप का आख्यान रे ॥१॥

भोजन तो केवल काया के संरक्षण का साधन।
पर भोजन के हित जीना तो सब से बड़ा विराधन।
पाकर के विजय स्वाद पर; करना संयम का सन्धान रे ॥२॥

मानव अधिक बोलकर बहुधा अपनी शक्ति विगोता।
और मौन से, खर्च हुए संबल को पुनः संजोता।
जीवन में आवश्यक है वचन गुप्ति का शुभ संस्थान रे ॥३॥

काया का संवर साधक का है व्यक्तित्व बढ़ाता।
और समुज्ज्वल करता आत्मा; उन्नत श्रेणि चढ़ाता।
मन-इन्द्रिय का कर दमन 'महेन्द्र' बनाओ स्वर्ण-विहान रे ॥४॥

लाघव साधना दिवस के उपलक्ष में

३८

[तर्ज—प्रभो ! तुम्हारे पावन पथ पर]

अनासक्ति की शुभ्र भावना जीवन शुद्ध बनाती है ।
कोटि-कोटि भव में संचित अघदल को दूर हटाती है ।।

बाह्य जगत के आकर्षण में मानव सहज लुभाता है ।
ममता का सम्लेप लगा फिर बन्धन निविड बनाता है ।
एक जानी चिन्मय की धारा, जो नि:श्रेयस पहुँचाती है ।।१।।

हरिण, शलभ और भ्रमर, मीन, मातंग त्याग कर लाघव को ।
प्राण-त्याग कर अज गमाते अपने वे स्वर्णिम लव को ।
अनासक्त, निर्मोह भावना उन्नति शिखर चढाती है ।।२।।

नमि राजर्षि, भरत चक्री, भद्रा-सुत, चक्री सनत्कुमार ।
अनासक्त हो, मोह-मुक्त हो, पहुचे मोक्ष-नगर के द्वार ।
उनकी ही अनुकृति 'महेन्द्र' जो उपशम धार बहाती है ।।३।।

आर्जव साधना दिवस के उपलक्ष में

: ३९ :

[तर्ज—इतिहास गा रहा है]

मन को सरल बनाकर, अब तोड़ो दुःख-घेरा।
होगा वहाँ सहज में, अध्यात्म का बसेरा ॥

जो दूसरो के हित नर है खोदता कुंएं को।
गिरता स्वयं उसी में छाया जहां अंधेरा ॥१॥

अध्यात्म-साधना का पलिमन्थु छद्मवृत्ति।
घटना श्री मल्लिप्रभु की देती हमें उजेरा ॥२॥

व्यवहार दूसरों का चाहता सदा सुधा-सा।
तो क्यों न उसके दिल में अपना हृदय उँडेला ॥३॥

ऋजुता 'महेन्द्र' अपनी थाती रही सुनहरी।
फिर चित्र छद्म का है किसने अरे! उकेरा ॥४॥

मार्दव साधना दिवस के उपलक्ष में

४०

[तर्ज—सभापति आप मिले]

विनय है जिन-शासन का मूल ।
अविनय को प्रश्रय देना है संयम के प्रतिकूल ॥
अपने को अति उच्च मानना,
और अपर को हीन समझना,
यह तो मोटी भूल ॥१॥

अभिमानी को ज्ञान न होता,
वह तो केवल बोझा ढोता,
करता तप की धूल ॥ २॥

अहंभाव का पूर्ण विसर्जन,
करना आत्मोदय का सर्जन,
खिलते सम के फूल ॥३॥

बाहुबली का तीव्र तपोबल,
तोड सका क्या मलिन अवदन ?
ओढ कषाय-दुकूल ॥४॥

पीथल वड़ा, हीरजी स्वामी, शिवजी, दीप तपस्वी रो ।
कोदर और अनोपचन्दजी, मुख मुनि घोर तपस्वी रो ।
जप कर दृढ़ मन नाम, तपस्या धारल्यो ॥४॥
पंखी[3] अपणी पांख्यां स्यूं झड़कादै मागी धूल नै ।
आत्मार्थी कर तीव्र तपस्या खो दै अघ रै मूल नै ।
'मुनि महेन्द्र' जीवन नै तप में ढालल्यो ॥ ५॥

३. सउणी जह पंसुगुंडिया विहुणिय धंसयई सियं रयं।
अेवं दविओवहाणवं कम्म खवइ तवस्सिमाहणे ॥
—सूत्र० श्रुत० १, अ० २, उ० १, गा० १५

: ४३ .

[तर्ज—दिल लूटने वाले जादूगर]

कर आतम-शक्ति नै केन्द्रित सामूहिक तप सब आरम्भ करो।
भव-भव रै सचित अघदल[1] नै काटण रो अेक उपाय खरो ॥
उग्र तपस्या मे बहुधा ओ तन गेडा अटकावै है।
अपणो रौब गाठ कर सहमा एक बार धमकावै है।
पर छाती कर मजबूत डटो, ल्यो लोहो रण मे विजय वरो ॥१॥

भूख भूआजी बिना बुलाया थारै केडै लागैला।
सूता भूखा भूत जगाणै मे नही कसर उठावैला॥
वारी परछाया स्यू रह दूरा शरणो ल्यो उत्कट तपरो॥२॥

दृढप्रहारी, चोर चिलाती, परदेशी, अर्जुनमाली।
घोर तपस्या रै माध्यम स्यू कलुषित आत्मा उजवाली।
वा तपस्या रै ऊचा आदर्शां नै सगला चरितार्थ करो॥३॥

बडी बडी लब्ध्या नै पाया मुनिवर तपस्या रै ही पाण।
बाहुबली, बाली रै बल री करै कौण सहसा अनुमान।
पूरव भव मे जो करी तपस्या प्रतिपल 'मुनि महेन्द्र' स्मरो ॥४॥

---

१ भव कोडी सचिय कम्म तवसा निज्जरिज्जई।

—उत्तरा०, अ० ३०, गा० ६

: ४४ :

[तर्ज—रोको काया री चंचलता नें]

आदिम बाबै रो परिवार सारो मंगलकारी ।
प्रतिपल जाप जप्यां स्यूं लाभ हुवै भारी ॥
सामायक, उपवास, पोषध आदि क्रिया ।
माता बिना कियां ही सब स्यूं पहली नाव तारी ॥१॥
राजनीति और धर्मनीति रा सर्जन हारा ।
बणग्या लाखां लोग आदीश्वर प्रभु रा अनुचारी ॥२॥
अनित्य भावना भाई चक्री भरत घणी ।
स्नान-घर में केवल पायो अघदल जारी ॥ ३॥
अपणी टेक निभाई भाई बाहुबली ।
बाहर महीना में ही केवल पायो मोह-छारी ॥ ४॥
इठ्ठाणु भायां रो तो इतिहास है बड़ो ।
अष्टापद पर सिद्ध बणग्या राग-द्वेष टारी ॥ ५॥
भगिनी ब्राह्मी-सुन्दरी रै शील री कथा ।
छिन-छिन याद करै है लाखां नर-नारी ॥ ६॥
ऋषभसेन हा ऋषभदेव रा गणधर मोटा ।
पहलो दानी बण श्रेयान्स सारी त्रास टारी ॥ ७॥
तापस मरीचि त्रिदण्डी महावीर-जीव हो ।
बणग्या सूर्ययशादिक आठ भावी केवलधारी ॥८॥
विघ्न-विनाशक, मंगलकारक नाम जपो ।
पावो 'प्रथम' प्रथम पद अनुपम सारा लाभकारी ॥ ९॥

४५

[तर्ज—बधावो गावो पूज्य पधार्या]

भीखणजी स्वामी मंगलकारी थारो नाम है ।
लाखां नर-नार्या तणा हुवै मन वञ्छित सब काम है ॥
बल्लुशाह रा लाडला, माता दीपा रा अंग-जात ।
सकलेचा परिवार में अवतरिया ले शुभ आथ ॥१॥
सतरह सौ तैयासिये सुद तेरस मास आषाढ ।
कटालियपुर में हुयो घर-घर में हर्ष प्रगाढ ॥२॥
सिंह सलूणो देखियो सपनै में दीपा मात ।
गर्ज्या सिंह जिसा सदा, पाई जग में अनुपम ख्यात ॥३॥
अठारह आठै लही द्रव्य दीक्षा तज परिवार ।
अठारह सतरै कर्यो, प्रभु तेरापथ-प्रचार ॥४॥
अठारह साठै कियो भाद्रव में स्वर्ग-विहार ।
"मुनि महेन्द्र" है वन्दना चरणा में शत-शत वार ॥५॥

: ४६ :

[तर्ज—माढ़]

भारीमाल भगवान् ! थांनै पल-पल ध्याऊं मैं ।
पल-पल ध्याऊं, बलि-बलि जाऊं, पाऊं परमानन्द ।।थांनै०

भिक्षु प्रभु री दूजी देही, गौतम ज्यूं महावीर ।
अन्धेरी ओरी री घटना करै रोमांच शरीर ।।१।।

मोह तात रो छोड़्यो खिण में शिशु वय में गुरुराज!
वाल जगत रो मस्तक ऊंचो तिण स्यूं वेअन्दाज ।।२।।

अठारह चौकै अवतरिया, तेरह में गृह-त्याग ।
वत्तीसै में युवपद पायो, जाग्या जग रा भाग ।।३।।

साठै तेरापंथ संघ नै कियो सनाथ कृपाल !
आभारी जुग-जुग म्हे रहस्यां, जपस्यां थांरी माल ।।४।।

अठन्तर रो माघ महीनो विद आठम री रात ।
स्वर्ग सिधाया; रहियो लारै प्रभु रो यश-संघात ।।५।।

४७

[तर्ज—बधज्यो रे चेजारा थारी बोल]

पल-पल ध्याऊं रायचन्द गणिराज,
मुख पाऊं अविचल सासता, हो गुरुराज ।
चरणा में तन-मन अर्पण कर आज,
राखूं सुदृढ शुभ आसता, हो गुरुराज ॥

अठारह सौ सैंतालीसैं साल, अवतरिया रावलिया बडी ।
शाह चतरोजी कुशलाजी रैं गेह, लागी खुशहाली री झडी ॥१॥

अठारह सौ सत्तावन री साल, झट त्याग दियो ससार नैं ।
हलुकर्मी प्रतिबुद्ध हुया रैं बाद, गर्वं क्यूं कर इ भार नैं ॥२॥

भिक्षु प्रभु री हाथ धरा निज शीश, ब्रह्मचारी री ख्याती लही ।
सहज सरलता, प्रतिभा री बेजोड, बाता तो ना जावैं कही ॥३॥

अठन्तर री मा विद नवमी देव ! तेरापथ रा नायक हुया ।
जाग्या लाखा लोगा रा तकदीर, शिवपथ रा ये दायक हुया ॥४॥

उन्नीसौ आठै री महीनो माघ विद चवदश पहली रात में ।
स्वर्ग पधार्‌या, सार्‌या आतमकाम, अब पावा केवल ख्यात में ॥५॥

: ४८ :

[तर्ज—म्हारी हथैल्यां रै बीच]

म्हारी भगती की भेंट सीकारो, जयाचार्य जी !
मैं भक्त थांरै चरणां रो ।
म्हारी वीनती मैं झट अवधारो, जयाचार्य जी !
मैं भक्त थांरै चरणां रो ॥

हे···म्हारै रूं-रूं में थे वसिया, मनडो थांमें लाग्यो ।
हे···लौ लागी थांरां स्यू म्हांरी, भ्रम-तम सारो भाग्यो ॥१॥

हे···साठै अवतरिया रोयट में मरुधर देश उजाल्यो ।
हे···कल्लू-आईदान शाह स्यूं सीर सलूणो घाल्यो ॥२॥

हे···गुणन्तरै घर-वार छोड़ कर जयपुर संयम धार्यो ।
हे···तिराणवै युवपद; आठै में गण रो भार सम्भाल्यो ॥३॥

हे···तीस वर्ष लग संघ-व्यवस्था करी सुचारु सारी ।
हे···भिक्षु प्रभु ज्यू थांरो ही है, गण-समुदय आभारी ॥४॥

हे···भव्य संगठन मर्यादा स्यू गण नै सदा सझायो ।
हे···पुलकित मन श्रद्धा-सुमनां रो, भेंटणो 'महेन्द्र' चढ़ायो ॥५॥

४६

[तर्ज—होली]

शरणो मघवा रो, हाँ हाँ शरणो मघवा रो है मंगलकारी रे ।
शरणो मघवा रो, हाँ हाँ शरणो मघवा रो है अतिसुखकारी रे ॥
मघवा ज्यू अवतरिया, बीदासर मे बन्नाजी रै गेह ।
सत्ताणव सुद चेत इग्यारस बरस्यो दूधा मेह ॥१॥
आठै जयाचार्य-चरणा मे सूप्यो अपणो जीवन-भार ।
बीसै युवाचार्य, अडतीसै गण-गोकुल-शृगार ॥२॥
सिरै पच री पदवी पाई, छोटी वय मे भी गुरुराज ।
अनासक्त ऋजुभाव क्षमा पर, सब नै होवै नाज ॥३॥
उदाहरण हा निर्विकार, निर्मोह भावना रा साचा ।
'सौभागी है मघजी' निकली जयाचार्य-वाचा ॥४॥
गुणचासै री चेत कृष्ण पाचम नै कीन्हो स्वर्ग-प्रयाण ।
'मुनि महेन्द्र' पल-पल ध्यावा गुरुवर रो शुभ अभिधान ॥५॥

: ५० :

[तर्ज—हरि गुण गाय लै रे]

माणक प्रभुवर रो, नाम वड़ो जयकारी।
षष्ठम गुरुवर रो, जाप सदा सुखकारी।
तन-मन कर स्थिर भाव स्यू सव ध्यान धरो नर-नारी ॥

संवत् वारह भादवा री कृष्ण चोथ सुखकार।
हुकमचन्द-छोटां तणै घर लियो सुखद अवतार ॥१॥

लघु वय में सहसा टिकी श्री जयाचार्य की दृष्टि।
अट्ठावीसै में हुई झट संयम री शुभ सृष्टि ॥२॥

जय-मघवा री सेव में तल्लीन रह्या नत शीश।
गुण-पच्चासै में वण्या प्रभु गण-गोकुल रा ईश ॥३॥

कोमलता कमनीयता रा उदाहरण हा एक।
संघ-सारणा-वारणा थे करी विना आरेक ॥४॥

चौपन कार्तिक मास में बिद दूज पधार्‌या स्वर्ग।
'मुनि-महेन्द्र', शुभ भावना स्यूं प्राप्त हुवै अपवर्ग ॥५॥

५१

[तर्ज—सपनो]

डालिम गुरु दिल मे बसिया जी।
दिल मे बसिया मैं करू प्राणा रो उपहार ॥

डालिम ही जीवन-जडी, डालिम ही आधार।
डालिम म्हारी चेतना, जीवन रा शृंगार ॥१॥

नौ कै रै आषाढ मे, उज्जयिनी अवतार।
मोत्या चोक पुगविया, पीपाडा-परिवार ॥२॥

तेवीसै रै भादवै हीरा मुनि रै हाथ।
संयम कमला स्वीकरी, प्रसर्यो यश अवदात ॥३॥

कच्छी पूज्य कहाविया, विचरत आगेवाण।
करी संघ-प्रभावना, झोक्या अपणा प्राण ॥४॥

चौपन पाट विराजिया निर्वाचन गण-हाथ।
छयासठै मे स्वर्ग नै करचो 'महेन्द्र' सनाथ ॥५॥

: ५२ :

[तर्ज—रोको काया री चंचलता नै]

कालू कालजै री कोर, म्हारो हार हीया रो।
शासण वाग रो रुखालो, है आधार जीया रो॥
छापर में अवतार लियो साल तेतीसै।
फैल्यो घर-घर में परकाश छोगा मात-दीया रो॥१॥
चम्मालीसै दीक्षा लीन्ही माता-भगिनी-साथ।
पायो मघवा गणीराज रो वरदान पियारो॥२॥
कोमल दिल मघवा-माणिक री महर पाई।
मान दृढ़ अनुशास्ता डालिम भी वढ़ायो ईयांरो॥३॥
ओलम्भो जीवन में पायो कदेई नहीं।
संवत् छ्यासठै सनूरो वणग्यो मालिक मुनियां रो॥४॥
सदा 'महेन्द्र' वढ़ाई शासन-सम्पदा घणी।
संवत् तैणवै सिधायो स्वर्ग साहिव सुधियां रो॥५॥

५३

[तर्ज—मूमल]

पल-पल गुरु तुलसी ध्यावो पावो सारा परमानन्द ।

इकोत्तर री कार्तिक शुक्ला दूज हो,
चन्देरी अवतरिया संघ-शिरोमणि ।
बैयासी में छोड़ी घर-परिवार हो,
कालू-चरणां में मानी मोजां घणी ॥१॥

वर्ष इग्यारह रहकर गुरुकुल-वास हो,
करियो ज्ञानाभ्यास विशेष प्रकार जी ।
तैराणव में जाग्या सब रा भाग हो,
बणिया च्यार तीरथ रा प्रभु आधार जी ॥२॥

नैतिकता रो देख्यो घर-घर ह्रास हो,
अणुव्रत रो दिखलायो नूतन मार्ग जी ।
फैल्यो सारै धर्म तणो उद्योत हो,
हुयो आध्यात्मिकता स्यूं अनुराग जी ॥३॥

भगती रा नव पूजा रो उपहार हो,
चरणां में 'महेन्द्र' चढावै आज जी ।
भगतां रै आधीन हुवै भगवान हो,
भगतां नै भगवान पै होवै नाज जी ॥४॥

: ५४ :

[तर्ज—होली खेलो रे]

धोरी शासण रा, हां हाँ धोरी शासण रा हा मंत्री मुनिवर रे।

ज्यां री अद्भुत सूझ-बूझ रो कायल शासण सारो रे।
वत्सलता कर याद हुवै नत मस्तक म्हांरो रे। ॥१॥

संघ-सारणा और वारणा में अगुआ नित रहिया रे।
आचार्यां री भुजा कहा जश जग में लहिया रे ॥२॥

कोष्ठ-बुद्धि गंभीर हृदय बण बातां सगली सुणता रे।
परख योग्यता ही तो बात हृदय री कहता रे ॥३॥

श्री तुलसी रो ध्यान-प्रशिक्षण जन-जन रै मन भायो रे।
मुनि नगराज ध्यान रो अभिनव दृश्य दिखायो रे ॥४॥

मंत्री मुनि रो स्मारक सुन्दर शरत् पूर्णिमा आई रे।
"मुनि महेन्द्र" स्वाध्याय-ध्यान री ज्योति जगाई रे ॥५॥

५५ :

[तर्ज—रोको काया की चंचलता नै]

पायो स्वामी रो शासण, आपां भाग्यशाली रे ।
इण लहराते गण-उद्यान रा तुलसी है माली रे ॥
बडा-बडा आचारज अपणी सूझ-बूझ स्यूं ।
इणरी दिन दूणी और रात चौगणी करी रुखाली रे ॥१॥

संघ है आपां रो, आपां सेवक संघ रा ।
आवै कोई भी भूचाल तो ना चलै ख्याली रे ॥२॥

शासण-रंग मजीठ है आपां रै लाग्योडो ।
दिन-दिन बढती ही सरसा रै मन में रहो खुशाली रे ॥३॥

संघ री सीमा में निर्भय चालता रहो ।
उजली आतमा बणावो पाप-भार निकाली रे ॥४॥

संघ री यश-कीर्ति फैलै च्यारूं कूंट में ।
भावो आ ही शुभभावना मुनिवर (श्रावक) मतिशाली रे ॥५॥

संघ री तन-मन स्यूं सेवा सारता हुया ।
पाया तीर्थंकर-पद भी तो सहज्यां आतम उजाली रे ॥६॥

संघ नै श्री-ज्यात गात रमता रहो ।
महावीर-युग री आ ही ही 'महेन्द्र' प्रणाली रे ॥७॥

: ५६ :

[तर्ज—हिवड़ै स्यूं दूर मत जाय]

पा तेरापंथ महान, आपां सौभागी ।
हो···धार्मिक जग में बढ़ रही दिन दूणी अविचल शान ।
नन्दनवन है मिल्यो,
सुरतरु साचो फल्यो,
अपणै हाथ चिन्तामणि आयो ।
आपां फलां फूलां
सुख रै झूलै झूलां
सागी मानसरोवर पायो ।
हो···तन-मन सब अरपण करां, करां जीवन नै कुर्बाण ॥१॥
शासण जीवन-जड़ी,
पाया धन्य घड़ी,
गौरव स्यूं सीनो फूलै ।
सागी चौथो आरो,
लाग्यो देखो प्यारो,
शीश आभै नै जाकर छूलै ।
हो···शासण सारो खिल रह्यो है मर्यादा रै पाण ॥२॥

भिक्षु वीर जीसा,
दीनी एक दिशा,
मात्रा री माला गूंथी।
आलसाई घटी,
कुटिलाई जगी—
वी री शक्ति अनूठी कूती।
हो निष्प्राणा मे भावना रा फूंक्या प्रभुवर प्राण ॥३॥

वाह ! वाह ! भिक्षु कृती,
करा आज स्मृती,
वै तो भागे मतीरा रो बान्ध्यो।
म्हारो तप रो छूट्यो,
संयम रो टूट्यो—
धागो, वी नै वै तो साध्यो।
हो ज्योति जगाई धर्म री तो भाग्यो भ्रम अज्ञान ॥४॥

मघ शतदल खिल्यो,
पुण्य मोती मिल्यो,
दे नम्बर आपा न्हावा।
छत्र छाया रहो,
भिक्षु री अहो,
आपा आत्मानन्द मनावा।
हो "मुनि नरेन्द्र" नगरी म्हूं सीधा आरो है भगवान ॥५॥

: ५७ :

[तर्ज—संघ के सितारे श्री श्री]

साधक सारा देखो आतमा स्यूं आतमा,
सार ओ ही है आगम रो अनूठो ।
निज गुण देखो, छोड़ो पर-गुण देखणा,
पर-गुण देख्यां बोलो कांई मिलसी ?
भोजन सरस पड़्यो दूसरै री थाली में,
भूख आपां री केवल देख्यां किया मिटसी ?॥१॥
अवगुण पर मत देवो नजर कदेई,
अवगुण तो है आतमा रो ढंकणो ।
बीज नियोजित कर निज शक्ति बढ़ैला,
ढंकणो फटैला, कांई पड़ैला न करणो ॥२॥
पर स्यूं घृणा है करणी बहुत बुरी जो,
निज स्यूं घृणा भी कियां हुवै आछी ।
तोलणै रा बाट न्यारा अपणा-पराया,
हुयां स्यूं बणैला कियां निज बात साची ॥३॥

ध्याता स्वयं हो आप, ध्यान भी स्वयं हो,
ध्येय न जुदो आप स्यूं जाणे।
लीना रो हूं सत्ता रो भान हुया स्यूं,
आतमा परम पद क्षण में ही पावै ॥८॥

ज्ञान और दर्शन रै जो पजुवा अणना में,
छिन-छिन आतमा रमण करै।
इण विहारै अमरी साधक 'महेन्द्र' जो,
धर्म धराधर मारग निर्मोह विचारै ॥९॥

: ५८ :

[तर्ज—धन्य गजसुकुमाल मुनि ध्यान धरै]

धन्य वोही नर साधना जो सफल करै।
पल-पल सावधान हो, अप्रमत्त विचरै।
धन्य वोही नर साधना जो सफल करै।
सफल करै; नहीं विफल करै॥
शीत-उष्ण, दंश-मंश, भूख-प्यास रा।
रोजीनै रा कष्ट अै तो साधु-वास रा।
पण आत्म-गवेपी तो न तनिक डरै॥१॥
अन्त-प्रान्त, रूक्ष-शुष्क आहार भी हुवै।
अणधार्‌या ही रोग रा प्रहार भी हुवै।
तो भी साधक स्व लक्ष्य स्यूं न थोड़ो भी टरै॥२॥
परिपां रा आघात प्रतिदिन होता ही रहै।
कदेयन मार्ग छोड़ साधक वहै।
अतएव सहजता में आत्म-रूप निखरै॥३॥
आड-दोड भावां में यदि कोई रै हुवै।
सेलग ऋषि रो जीवन ध्यान स्यूं जुवै।
मेटी मन री कायरता नै, ऊँचा भाव भरै॥४॥
स्यालियां री हूक सुण के सिंह है डरै?
अपणै में अलमस्त वो तो सुखे विचरै।
इस्या साधक 'महेन्द्र' जग नै तारै रु तरै॥५॥

५६

[तर्ज—मोरिया आछो बोल्यो रे ढलती]

मानवी ! मत चूकी रे तू अपणी चाल नै।
थारै चूक्या स्यू होमी हाल-बेहाल ॥
मानवी ! ऊचो चढणो है प्हाडा ऊपरै।
मकडी पगडण्टी रो कर ग्याल ॥१॥
मानवी ! काली राता है बहुत डरावणी।
ऊण्डा-ऊण्टा खाला रो है जाल ॥२॥
मानवी ! ऊबड-खाबड पथरीली राह है।
तीखी शूला ऊभी मुह फाड ॥३॥
मानवी ! जगी झाड्या रो तो नही पार है।
रह-रह बोले है सिह-सियाल ॥४॥
मानवी ! साथी तो थारे है नही।
तो भी हिम्मत राखजे सभाल ॥५॥
मानवी ! मजिल तो दूर, गती भी मन्द है।
साहस स्यू ही पहुचै लो बी पार ॥६॥
मानवी ! साचो सहायक थारो धर्म है।
"मुनि महेन्द्र" इण मे रम होजे नू रे निहाल ॥७॥

: ६० :

[तर्ज—म्हांरी हथेल्यां रै बीच छाला पड़ग्या]

साची साधना रो दीप जगाकर, भोला मनड़ा,
हां रूप असली तूं जो लै ।
ऊंची लीनता रो परिचय देकर, भोला मनड़ा,
हाँ पाप सारा तूं धोलै ॥

हे···मधुर-मधुर संगीत सुणननै तीजै गाम सिधावै ।
हे···आतमा री ऊंडी बात सुणननै कितोयक समय लगावै ॥१॥
हे···सुन्दर-सुन्दर रूप निरखवा ऊठसवारै धावै ॥
हे···आतमा रो असली रूप जोवण नै कांई करतूत दिखावै ॥२॥
हे···मतवालो भंवरो तूं वणकर दर-दर भटकण ज्यावै ।
हे···आतमा री गन्ध लेवण रै मोकै आलसी घणोई वणज्यावै ॥३॥
हे···खाटा-मीठा स्वाद चाखणनै प्रतिपल तूं ललचावै ।
हे···आतमा रो स्वाद लेण रै अवसर, तनै ऊंघ आज्यावै ॥४॥
हे···गमता-गमता स्पर्श करण नै क्षण-क्षण तूं अकुलावै ।
हे···आतमा रो स्पर्श करचो न जरा भी लक्ष्य कियां तू पावै ॥५॥
हे···विन पांख्यां आंख्यां ही सारै फिर-फिर समय वितावै ।
हे···क्षणभर आतमा रै निकट बैठतां तनै अमूजणी आवै ॥६॥
हे···इन्द्रयां नै तूं करजे समाहित आत्म-रूप तूं पाई ।
हे···साधना में सफल "महेन्द्र" वणीजे कसर न राखजे राई ॥७॥

६१ ·

[तर्ज—म्हारी हथेल्यां रे बीच छाला पडग्या]

कुछ कारण स्पष्ट बतावो, स्याणा राजाजी !
नाक कया ढाको थे ?
थारी चेतना री सगती दिखावो, स्याणा राजाजी !
नाक कया ढाको थे ?
हे ' उछल-उछल दुर्गन्धी आवै बैठ्यो ही नहीं ज्यावै।
हे मन मोहक इण राज-भवन मे म्हारो जी घबरावै ॥१॥
स्याणी कुंवरी ! नाक इया ढाका म्हे ।
म्हे कारण स्पष्ट बतावा, स्याणी कुंवरी !
नाक इया ढाका म्हे ॥
हे' जीवन मे दुर्गन्धी इसडी म्हे तो कद ही न जोई ।
हे' सड यै-गल्यै शव की ज्यू भभकै म्हारी रे चेतना मोई ॥२॥
हे सरस-सरस भोजन जो प्रतिदिन मन ममता मैं करती ।
हे अेक ग्रास उणस्यू लेकर मैं इण मे प्रमुदित धरती ॥३॥
हे म्हारै जिसी ही आ प्रतिमा है म्हारै जिसो ही सावै ।
हे घृणा जेक स्यू, प्रम अेक स्यू देख हृदय सिदावै ॥४॥
हे पुद्गल अशुभ देख यदि थारो जीवडो है घबरावै ।
हे तो अन्तर री आत्म्या खोलो तत्व हाथ आ ज्यावै ॥५॥
हे 'म्हारी काया भी अशुची स्यू भरी पडी है सारी।
हे 'क्यू इण मे आसक्त बण्या थे चेतनरूप विसारी ॥६॥

हे···पुद्गल स्यूं थे दृष्टि हटावो निज गुण नैं अब जोवो ।
हे···बीजली रो झबकार मिल्यो है चेतना रा मोती पोवो ।।७।।

हे···काल अनन्तो बीत गयो है, बीत और भी ज्यासी ।
हे···काम-भोग री आशा-वंछा छोड़्यां स्यूं सुख थासी ।।८।।

हे···पूर्व तीसरै भव में आपां सातूं सहचर शूरा ।
हें···करी तपस्या तीव्र भाव स्यूं तोड़्या अघ-दल पूरा ।।९।।

हे···माया राख हुई मैं कन्या, राजा थे छव हुआ ।
हे···पूर्व स्नेह स्यूं प्रेरित होकर आया जूआ-जूआ ।।१०।।

हे···सुण सारो वृत्तान्त हृदय में लेश्या शुभतर आवै ।।
हे···ईहापोह हुयो सबकै मन जातिस्मरण तो पावै ।।११।।

हे···खोल्या द्वार गर्भ-गृह रा जब, सब अेकत्रित होग्या ।
हे···मल्ली-वचन "महेन्द्र" सुणी नैं, वै प्रतिबोधित होग्या ।।१२।।

: ६२ :

[तर्ज—म्हारी हथेल्या रे बीच छाला]

नारी घटना रो भेद बतावो, म्हारी माताजे !
अै गीत गुण गावै है।
म्हारी जिज्ञासा नै शान्त करावो, म्हारी माताजे!
अै गीत गुण गावै है॥

हे गुणां रो चिन्तो गीत है होग्यो छिन-छिन मैं गुण पाऊ।
हे साधक ज्यू एकाग्र बणीनै समय न व्यर्थ गमाऊ॥१॥

ह० पड़ोसी रै घर धीनड़ियो आयो, झूम-झूम हुलसावै।
म्हारा बालूड़ा ! ऐ गीत बीरा गावै है।
हे इसी खुशी नो दिन वारै है हिल-मिल मोद मनावै॥२॥
म्हारा बालूड़ा ! अै गीत बीरा गावै है।

नारी घटना रो भेद बताऊ, म्हारा बालूड़ा !
अै गीत बीरा गावै है।

थारी जिज्ञासा नै शान्त कराऊ, म्हारा बालूड़ा !
अै गीत बीरा गावै है॥

ह जाग्यो जद थारै घर माता म्हारा जो मोद मनाया ?
म्हारी माताजे !

हे···हि्लमिल सारा बोल कितायक गीत खुशी रा गाया ।
म्हारी माताओ ! ।।३।।
हे···थारै जनम-दिवस रै अवसर धूमधाम वहु माची,
म्हारा वालूड़ा !
हे···सारै परिकर नै कर भेलो तन-मन गहरी राची,
म्हारा वालूड़ा ।।४।।
हे...माताजी ! अव ओ के होग्यो, गीत सुहाणा नहीं लागै
म्हारी माताए !
हे...कानां में खीलयां-सी लागै, मन तो नहीं अनुरागै,
म्हारी माताओ! ।।५।।
हे···धीनड़ियो जनम्यो जो पहलां वीनै यमराज बुलायो,
म्हारा वालूड़ा !
हे···वज्राघात लग्यो सारां रै पासो वो पलटायो,
म्हारा वालूड़ा ! ।।६।।
हे···यम रो नाम सुणी नै चमक्यो, पूछै सरल पणा स्यूं
म्हारी माताए !
हे···कांई मैं भी यम रै घर रो बोल पावणो होस्यूं,
म्हारी माताए! ।।७।।
हे···जन्म-मरण री लाय लगी है, सारा वलता जावै,
म्हारा वालूड़ा !
हे···नेमिनाथ रो शरण ग्रहण कर वै भव आग मिटावै,
म्हारा वालूड़ा ! ।।८।।
हे···थावरचा सुत करै प्रतीक्षा नेमिनाथ कद आवै ।
हे···शीघ्र 'महेन्द्र' पधार्‍या जिनवर, आनन्द सारै थावै ।।६।।

६३

[तज—खमा खमा खमा रे कवर]

छोडो छोडो छोडो रे थावरचा रा कवरा !
आ वात अणगमती छोडो जी हो।
सुण रा थे मोवन छोटी-सी अवस्था,
माताजी स्यू नेह मत तोडो जी हो ॥
म्हकर म्हारी कर-छाया मे,
दिन दूणी मौज उडावो जी हो।
सयम जीवन जिना है अलूणी
मन ना दृष्टि लगावो जी हो ॥१॥
राज्य-कोष ओ थारै सुपरत,
सेना सगली साथै जी हो।
छोटी-मोटी भूल-चूक भी,
पदेयन आगी मार्थ जी हो ॥२॥
बोलै थावरचा-सुत सविनय,
आनारी मैं थारो जी हो।
तान अनानक आता रहस,
रहो कुण हौसी म्हारो जी हो ॥३॥

छोड़ो छोड़ो छोड़ो रे कंवर वसुदेव रा,
आ बात अणगमती छोड़ो जी हो।
सुख रा ग्रै साधन दुख री निशाणी,
शुभ भावना ने मत मोड़ो जी हो॥

आयां बुढ़ापो देही जर्जर,
रंग रूप पलटासी जी हो।
नेह दिखावै जो न्यातीला,
नेड़ा कोइयन आसी जी हो॥४॥

धन-दौलत अरु मान-प्रतिष्ठा,
घणी-घणी थे देस्यो जी हो।
पण बुढ़ापै और मौत स्यू,
कियां वचा थे लेस्यो जी हो॥५॥

प्रश्न सुणत ही सिर डोलायो,
वासुदेव तव वोलै जी हो।
काम असंभव ओ तो सारो,
कहो गांठ कुण खोलै जी हो॥६॥

दानव, मानव, देव इन्द्र भी,
इण रै आगै हारै जी हो।
खपा 'महेन्द्र' सभी कर्मां नै,
अपणा काम संवारै जी हो॥७॥

६४

[तर्ज—खड़ी नीम के नीचे]

सजग रहीजे सयम मे दिन रात तू ।
जल्दी करजे सफल साधना अगज ! विन व्याघात तू ॥

धोरी वृषभ वहे ज्यू वहजे सदा साधना रो तू भार।
लाखा जीवा रै सयम-जीवन रो भी बणजे आधार।
समचित हो सहजे परिषह्-आघात तू ॥१॥

हे प्रमाद पलिमन्थु साधना रो ओ पल-पल रखजे ध्यान।
और कपाय योग भी समय-समय पर कर देवै व्यवधान।
कभी न करजे वा पर दृष्टि-निपात तू ॥२॥

धन-परिजन रै चक्रव्यूह नै पीठ दिखातो ही रहजे।
यश-पद री लिप्सा नै अगज ! आत्म-भावना स्यू दहजे।
ममता रै बन्धन पर करजे घात तू ॥३॥

जब तक है उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पराक्रम-पुरुषाकार।
तब तक तप, स्वाध्याय, ध्यान स्यू ज्योतित करजे निज आगार।
अनशनपूर्वक पाई चिन्मय-आय तू ॥४॥

एक दृष्टि हो सदा सर्प की तरह, लक्ष्य नै पाणो है।
'मुनि महेन्द्र' कर पूर्ण चेतना, जागृत कदम बढाणो है।
माता री आ याद राखजे बात तू ॥५॥

: ६५ :

तपस्या री भाचा

[तर्ज—झिर-मिर झिर-मिर मेवज]

विचरत-विचरत वीर जिणेसर,
नगर रजागृह सहसा आवियाजी।
साथ में तपस्यां रो मोटो ए संघ है,
मिनख हजारां रा मन लुभावियाजी ॥१॥

श्रावक श्रेणिक मगध नरेसरू,
वीर जिणेसर वांदण आवियो जी।
साथ में चेलणा राणी भी आविया,
सारां रै मन में आनन्द छावियोजी ॥२॥

गौतम गणधर लबध्यां रा आगर,
ज्यांरै अंगूठै ईमरत वसै जी।
मगल-कारक नाम लेतां थकां,
तपस्या में मनड़ो दूणो उल्लसैजी ॥३॥

तपसी तो सारा में धन्नो ए मोटको,
वातां अनूठी जिण रै ख्यात री जी।
पल-पल सुध मन जप जपतां थकां,
तपस्या में सगती आवै सांतरी जी ॥४॥

देवगी माहिवी महला मे भोगता,
शालभदरजी छोटी पलक मे जी।
तप तप्यो घोर वै काया नै मोमली,
फैली हे महिमा ज्यारी मुलक मे जी ॥५॥

खन्धक तापस गौतम रा सखा,
वीर प्रभु रै चरणा आविया जी।
शोक नै तपस्या मे देह नै आपणी,
मार सयम री नोखो पाविया जी ॥६॥

देवता बोध दे सयम रै मार्ग मे,
मेतारज नै तो जल्दी ल्याविया जी।
आजन्या सिर पर वीर जिणेस री,
धारि तप, शिव पद पाविया जी ॥७॥

राजवगणै रा मुनि नन्दीषेणजी,
तप री जगाई ज्योती महाधुनी जी।
हरिकेशी तपसी रै तप रै विस्तार नै,
गावै है आणै-टाणै महागुणी जी ॥८॥

और भी आपणै घोर तपसी हुवा,
सुमरण ज्यारो सुख सपजै जी।
ध्यावता ध्यान वारो हुवै शुद्धता,
ज्ञान-दर्शण रा मोती नीपजै जी ॥९॥

ढटण ऋषिवर नगर दुवारिका,
मास छ मधुकरी मे घूमिया जी।
असगरो दुष्कर तपसी रै तेह थी,
आहार-पाणी तो नही पाविया जी ॥१०॥

तपस्या री नीव दी आपणै संघ में,
स्वाम भीखणजी आगम-वुद्धिया जी ।
अमी, भीम, राम, शिव, कोदर तपसी ए,
सुख मुनि तप-रण में भूझियाजी ॥११॥

पीथल, हीरजी, दीपजी, मोड़जी,
तपस्यां में ज्यांरो अगुओ नाम है जी ।
अणचांजी, भूरांजी, भूमांजी आददे,
आतमा नै करि अभिराम है जी ॥१२॥

तपस्या रो नित उठ ध्यान ध्यातां थका,
पोरस जागै 'महेन्द्र' सौ गुणो जी ।
तपस्या है साधन करमां रै नाश रो,
सारा ओ दृढ़मना पथ चुणो जी ॥१३॥

· ६६

तपस्या री भावना

[तर्ज—म्हारी शील सुरंगी चूनड़ी]

तपस्या करण रो मन हुयो, म्हारा सैंठा है परिणाम जी ।
म्हारी चिन्मया चरम री आतमा तपस्या स्यू मोहे ही राज ।
तपस्या स्यू मोहै आतमा, जाणै कंचन जड़ियो रतन जी ॥
मन री निरमलता करू, जिणस्यू सीझै आतम-काम जी ॥१॥

काल अनन्तो बीतग्यो तो भी तृप्त न होयो मन जी ।
मेरु जिती मिसरी भखी तो ही जीभ है जहर समान जी ॥२॥

खाटा-मीठा-चरपरा करूया भोजन तो हर वार जी ।
देह बधारी मोकली तो ही मरयो न आतम-रार जी ॥३॥

देह मदा स्यू माहरी रोकै निज गुण वार-वार जी ।
घूमू इण लारै मदा पोखू छिन-छिन विविध प्रकार जी ॥४॥

देह रै खातिर मैं सदा ढोयो पापा रो अतिभार जी ।
भमता-भमना बीतग्यो म्हारो अमित समय सुखकार जी ॥५॥

आयो मोको हाथ मे मैं काढू देह रो सार जी ।
कर तपस्या आकरी ज्यू उतरू ना भव-पार जी ॥६॥

: ६८ :

[तर्ज—पाटी वरतो ल्याद्यं मनै]

म्हांरै आज पधार्‌या मुनिवर, ऊग्यो सोना रो है दिनकर ।
म्हे तो मोत्यां चोक पुरावां, गांवां हिलमिल आज वधावो जी ।
वरस्यो दूधां मेहड़लो ॥

थे तो धर्म धुरा रा धोरी, थे तो ममता-माया छोड़ी ।
थांरै चरणां शीश नमावां, गांवां हिलमिल आज वधावो जी ॥१॥

थे तो गांवां-गांवां घूमो, जनता री कमियां नै तूमो ।
थांरी वलिहारी म्हे जावां, गांवां हिलमिल आज वधावो जी ॥२॥

थांरी वाणी अमृत वरसै, सुण-सुण जन-मानस अति हरसै ।
थांरी मूरति देख लुभावां, गांवां हिलमिल आज वधावो जी ॥३॥
भौतिकता में भूल्यै जग नै, ल्यावो ज्ञान-दान दे मग में ।
थांरी पद-रज शीश चढ़ावां, गांवां हिलमिल आज वधावो जी ॥४॥

म्हांरो आज सुरंगो शहर, पाकर मुनि-चरणां री महर ।
सारा झूम-झूम हुलसांवां, गांवां हिलमिल आज वधावो जी ॥५॥

: ६९ :

[तर्ज—तुम्हीं मेरे मन्दिर तुम्हीं मेरी पूजा]

जाते ही हैं जब कि हमको लुभाकर,
(तो) ले लो विदाई, ले लो विदाई।
भग जा रहा है दिल श्रावकों का
कैसे सहेंगे हम यह जुदाई॥
जिस दिन पधारे थे, खुशियां बहुत थीं,
जनता के मन में पुलकन बहुत थी,
जाते हैं आज जब कि देखो न सबके,
चेहरों पे कैसी उदासी है छाई॥१॥
चार मास रहकर अलख जलाई,
भूलों को तुमने राह दिखाई,
त्याग-तपस्या के माध्यम से तुमने,
पाटी अनैतिकता की है खाई॥२॥
जहां भी पधारें, विजय खूब पाना,
भक्तों की भक्ति को भूल न जाना,
प्रस्थान-वेला में होकर दयालु,
दे दो न वापिस आने की साई॥३॥
मुने! याचना है एक हमारी,
चाहते कृपा हम प्रतिपल तुम्हारी,
संभाल लेते रहना हमारी,
छाये न जिसमें पापों की काई॥४॥

: ७० :

[तर्ज—सपनो]

मिगसर वैरी वेगो क्यू आयो रे ।
मिगसर तनै कवण बुलायो रे ।
लोग सैंकड़ां रा हुया दिलड़ा आज उदास ।
धर्म-धुरा रा धारका करसी दूर प्रवास ॥१॥
च्यारूं वखतां आवती जनता सारी दौड़ ।
करता सेवा आपरी पूरा करता कोड़ ॥२॥
अबै हुड़रका आवसी कद सुणस्यां व्याख्यान ।
तप-संयम री प्रेरणा पास्यां कद अम्लान ॥३॥
सुखे-सुखे तुम विचरज्यो, करज्यो गुरुवर-दर्श ।
करज्यो संघ-प्रभावना, पाज्यो नव उत्कर्ष ॥४॥

७१

[तर्ज—नाभीराजा कुलदीपक चन्द]

आज विहार करै मुनिराज,
हिवडो छीजे है बेअन्दाज ।
मन मे उदासी छाई घणी,
पण आ निजोगी है बात बणी ॥१॥

मुनिवर ! आप सुखे विचरो,
जनता मे धर्म रा भाव भरो ॥
जिण दिन पधार्या हा मुनिवर आप,
खिलग्यो नगर म्हारो टग्यो सताप ।
आज हुया है म्हारा भवन उदास,
ओ दिन कदेयन जातो जी रास ॥२॥

धर्म धुरा रा ये धारण हार,
जन-जन नै प्रतिबोधणहार ।
धरम री महिमा करज्यो घणी,
मुलक-मूलक मे ये मुकुट-मणी ॥३॥

जैन धर्म रो करज्यो प्रसार,
वीर-वाणी रो करज्यो प्रचार।
भीखणजी स्वामी रो पंथ,
जग में दीपावज्यो सहज भदन्त ॥४॥

ग्रामां-नगरां विचरत-काल,
भक्त जनां री करज्यो संभाल।
भूल न जाज्यो म्हारो धार्मिक भाव,
म्हारै मन संयम रो है चाव ॥५॥

साधु-वन्दना

[तर्ज—वधावो गावो पूज्य पधारया]

परमेष्ठि-चरण मे मेरी है शत-शत वन्दना।
तन्मय होकर मैं करू नित प्रात उठ अभिवन्दना ॥

इष्ट देव अरिहन्त हैं, गुरुवर सच्चे निर्ग्रन्थ रे।
श्रीजिन-भाषित धर्म है, यह समकित का शुभ पन्थ रे ॥१॥

शोभित गुण बारह सदा अरिहन्त देव भगवान रे।
पचतीस वचनातिशय, अतिशय चौतीस प्रधान रे ॥२॥

पावन करे विदेह को, वे बीस-एक सौ साठ रे।
भरत-ऐरवत क्षेत्र में होता जिन दश का ठाठ रे ॥३॥

चौसठ इन्द्रो से सदा पूजित रहते अरिहन्त रे।
स्व-पर-तारक पूज्य हैं, तीर्थंकर देव भदन्त रे ॥४॥

गतकालिक चौबीसिया सारी ही हैं श्रद्धेय रे।
पल-पल मुंह पर नाचना, उनका ही है अभिधेय रे ॥५॥

सिद्ध साध कर चेतना हुए जन्म-मरण से मुक्त रे।
पन्द्रह भेदो से हुए, हैं आठ गुणो से युक्त रे ॥६॥

योग-वियोग न है जहाँ, सुख-दुख का नहीं लगाव रे।
हर्ष-शोक से मुक्त हैं, केवल अपना ही भाव रे ॥७॥

आत्म-रमणता पूर्णतः जिनकी पल-पल अविराम रे ।
सिद्ध अनन्त सदा वने; मेरे तो शुभ विश्राम रे ॥८॥

प्रतिनिधि हैं अरिहन्त के गणधारक धर्माचार्य रे ।
शोभित गुण छत्तीस से उद्धारक जग के आर्य रे ॥९॥

संघ-सारणा-वारणा में रहते सजग सदैव रे ।
करवाते शुभ साधना, हटवाते हैं अहमेव रे ॥१०॥

आगम-अध्येता प्रखर, अध्यापक, वाचक शिष्ट रे ।
उपाध्याय स्वाध्याय से शासन में लब्धप्रतिष्ठ रे ॥११॥

श्रुत के दानी वस्तुतः होते हैं दानी श्रेष्ठ रे ।
जिससे पाते हैं सुखद साधक पाथेय यथेष्ठ रे ॥१२॥

सतत साधना-लीन हैं, नित अप्रतिवन्ध विहार रे ।
सप्त-वीस गुण-युक्त हैं निर्मोही शान्त विचार रे ॥१३॥

दो हजार कोटी मुनि, मुनि अंक[1] हजार करोड़ रे ।
निकल पड़े संसार से सब ममता-माया छोड़ रे ॥१४॥

परमेष्ठी पंचक सदा ध्याते कर मन एकाग्र रे ।
पाते शाश्वत सम्पदा, होते न कभी वे व्यग्र रे ॥१५॥

आधि-व्याधि होती नहीं, होती न प्रेत की मार रे ।
रहते सव अनुकूल ही, करते उसका सत्कार रे ॥१६॥

उन्नत आत्माएं सभी हैं पांच पदों में लीन रे ।
फिर भी कुछ उल्लेख मैं करता; होने स्वाधीन रे ॥१७॥

---

१. नव ।

जिनवर-चरणों में मेरी है शत-शत वन्दना।
तन्मय होकर मैं करु नित प्रात उठ अभिवन्दना॥

ऋषभदेव युगनाथ हैं, प्रभु अजित-जीत ससार रे।
सम्भव, अभिनन्दन प्रभु, हुए सुमतिनाथ भव-पार रे॥१८॥
पद्मप्रभ जिनराज का ले शरण हरु भव-पीर रे।
श्रीसुपार्श्व, चन्द्रप्रभु, सुविधि, शीतल शीतल नीर रे॥१९॥
श्री श्रेयास कृपानिधि, है वासुपूज्य जगदीश रे।
विमल, अनन्त महाप्रभु, जिन धर्म, शान्ति वागीश रे॥२०॥
कुन्थु, अर, मल्ली सदा, ध्याऊ सुव्रत तीर्थेश रे।
नमि, नेमीश्वर, पार्श्व जिन, प्रभु वर्धमान सर्वेश रे॥२१॥
लोक-प्रकाशक हैं हुए, तीर्थंकर ये चौबीस रे।
मानव-मानव का जहाँ झुकता श्रद्धा से शीश रे॥२२॥
सीमंधर स्वामी सदा करते जन-जन कल्याण रे।
युगमन्दिर, बाहु प्रभु, धार्मिकता के आस्थान रे॥२३॥
सुबाहु स्वामी करें शिव-मगल-भद्र सुजात रे।
स्वयप्रभ जिनराज से होता है प्रभा-प्रपात रे॥२४॥
ऋषभानन हैं सातवे, अनन्तवीर्य गुण-धाम रे।
सूरप्रभ अरिहन्त का मैं ध्यान धरू हर याम रे॥२५॥
देव विशाल विशाल हैं, श्री वज्रधर आधार रे।
चन्द्रानन प्रभु चन्द्र ज्यों हैं शीतलता की धार रे॥२६॥
चन्द्रबाहु जग इष्ट हैं, सुख-दायक देव भुजग रे।
ईश्वर, नेमीश्वर-चरण वन्दन मेरा साष्टाग रे॥२७॥

वीरसेन, महाभद्र जी, श्रीदेवयशा प्राणेश रे।
अजितवीर्य का है मुझे स्वीकार सुखद आदेश रे ॥२८॥

विरहमान ये वीस हैं, गुन गाऊँ हो तल्लीन रे।
पाऊँ मैं सर्वज्ञता, तोड़ूं अघ सब प्राचीन ॥२९॥

गणधर-चरणो में मेरी है शत-शत वन्दना।
तन्मय होकर मैं करूं नित प्रातः उठ अभिवन्दना ॥

गौतम स्वामी की स्मृति करती सहसा उन्मेष रे।
अग्निभूति सबका करें नित क्षेम-कुशल सुविशेष रे ॥३०॥

वायुभूति हैं तीसरे, प्रभु व्यक्त व्यक्त चैतन्य रे।
सुधर्मा प्रभु वीर के हैं पटधर गत-मालिन्य रे ॥३१॥

मण्डित-सुत मण्डित करे, आत्मा के भाव समस्त रे।
मौर्यपुत्र जपता रहूं होने को मैं आश्वस्त रे ॥३२॥

अकम्पित के ध्यान से होते कम्पित सब कर्म रे।
अचलभ्राता अचलता का बतलाते हैं मर्म रे ॥३३॥

मेतार्य प्रभु मलिनता करते हैं मन की दूर रे।
प्रभु प्रभास प्रभा करें, जिससे होऊँ सम-शूर रे ॥३४॥

गणधर ग्यारह वीर के हैं आस्था के आधार रे।
शुद्ध भावना का करूँ प्रतिदिन नव-नव उपहार रे ॥३५॥

चवदह सौ बावन हुए, सब जिनवर के गणधार रे।
पूजनीय वे विश्व के हैं समता-रस की धार रे ॥३६॥

मुनिवर-चरणो मे मेरी है शत-शत वन्दना ।
तन्मय होकर मैं करूं, नित प्रात उठ अभिवन्दना ॥

भरत भूप ने महल मे पाया शुभ केवल ज्ञान रे ।
चक्री सगर प्रबुद्ध हो, सहसा पहुचे निर्वाण रे ॥३७॥

मघवा नर-मघवा हुए, हुए चक्री सनत्कुमार रे ।
शान्ति, कुन्थु, अरनाथजी, चक्री अरु जिन अविकार रे ॥३८॥

पद्मोत्तर-सुत पद्मजी, श्री हरिसुत जय भूमीश रे ।
षट्खण्डाधिप ये हुए सर्वज्ञ सभी पृथ्वीश रे ॥३६॥

अचल, विजय बलदेव जी, श्रीभद्र, सुप्रभ सदीप रे ।
सुदर्शन-आनन्द जी, नन्दन, श्रीराम सुद्वीप रे ॥४०॥

सिद्ध हुए हैं राम ये, क्षय कर निज पाप समग्र रे ।
ब्रह्मलोक मे हैं गये, बलभद्र तपस्वी उग्र रे ॥४१॥

बल भण्डार बाहुबली, श्री ऋषभसेन गणराट् रे ।
अठाणव भाई सभी, मुनि सूर्ययशादिक आठ रे ॥४२॥

बलि, महाबल, अचल जी, धारण, पूरण, वसुमित्र रे ।
वैश्रवण, अभिचन्द्र जी हुए तपसी परम पवित्र रे ॥४३॥

चन्द्रछाय, प्रतिबुद्ध जी, मुनि सगर स्वसी सन्त रे ।
दीन न हुए अदीन तो, मुनि जितशत्रु भगवन्त रे ॥४४॥

नन्दमित्र, मुनि नन्दन जी, मुनिराज सुमित्र सुमित्र रे ।
भानुमित्र, बलमित्र जी, मुनि अमर अधम-पवित्र रे ॥४५॥

अमरसेन, महासेन जी, मुनिवर ये आठ विशिष्ट रे ।
मल्ली जिनके साथ मे हुए दीक्षित श्रद्धानिष्ठ रे ॥४६॥

भद्रदशार्ण नृपाल ने छोड़ा निज का अभिमान रे।
पुण्डरीक ने चेतना का किया शीघ्र अवधान रे ॥६९॥

पुण्यपाल, गागेयजी, जिनपाल, सुबाहुकुमार रे।
समुद्रपाल मुनि ने किया सब पापों का प्रतिकार रे ॥७०॥

गर्दभाली मुनि ने किया संयति को संयम दान रे।
साल मुनि, महासालजी, पीठर, गागली महान रे ॥७१॥

पुर साकेत चिलात ने लिए भावरत्न तत्काल रे।
शख, अलक्ष्य महीपने है त्याग दिया जंजाल रे ॥७२॥

सतिवर-चरणों में मेरी है शत-शत वन्दना।
तन्मय होकर मैं करूं नित-प्रात. उठ अभिवन्दना ॥

मरुदेवा ने है किया सबसे पहले कल्याण रे।
इस अवसर्पण काल में पहला था मोक्ष-प्रयाण रे ॥७३॥

भगिनी ब्राह्मी, सुन्दरी, कौशल्या, सीता शिष्ट रे।
राजिमती, कुन्ती सती, थी द्रुपद-सुता सतनिष्ठ रे ॥७४॥

चन्दनबाला वीर की शिष्याओं में थी ज्येष्ठ रे।
मृगावती, सुलसा, शिवा, दमयन्ती अतिशय श्रेष्ठ रे ॥७५॥

प्रभावती, पद्मावती, पुष्पचूला सती प्रसिद्ध रे।
सुभद्रा भद्रानना, सोलह सतियां समृद्ध रे ॥७६॥

देवानन्दा, रेवती, जिज्ञासु जयन्ती खास रे।
यशोमती 'रु सुदर्शना ने किया ज्ञान-अभ्यासरे ॥७७॥

गुरुवर-चरणो में मेरी है शत-शत वन्दना।
तन्मय होकर मैं करूं नित-प्रात. उठ अभिवन्दना ॥

जम्बू स्वामी का बना है एक नया इतिहास रे ।
आठ रमणियां छोडकर, छोडी वैभव की प्यास रे ॥७८॥

प्रभव, शयभव सूरि ने पाया था आत्म-प्रकाश रे ।
यशोभद्र, सभूति ने किया अद्भुत सघ-विकास रे ॥७९॥

भद्रबाहु श्रुतकेवली, श्री स्थूलिभद्र सुविनीत रे ।
गणनायक श्री महागिरि, हैं आर्य सुहस्ति पुनीत रे ॥८०॥

गुणसुन्दर, श्यामार्य जी, प्रभु स्कन्दिल, रेवतिमित्र रे ।
धर्म, भद्रगुप्त सूरिवर, श्रीगुप्त सूरि सुपवित्र रे ॥८१॥

देव वज्र अन्तिम हुए, दश पूर्वी पचम काल रे ।
रक्षित प्रभु अनुयोग के सस्कर्ता हुए विशाल रे ॥८२॥

दुर्बलिका पुष्यमित्र जी, हैं वज्रसेन गणिराज रे ।
देवर्धि तक पूज्य के चरणो मे वन्दन आज रे ॥८३॥

पुरुषोत्तम भिक्षुप्रभु, गण-नेता भारीमाल रे ।
ब्रह्मचारी ऋषिरायजी, जयजय तेरापथ-भाल रे ॥८४॥

मघवा, माणिक पूज्यजी, तेजस्वी डालिमनन्द रे ।
कालू हैं जीवन-जडी, प्रभु तुलसी पूनमचन्द रे ॥८५॥

मुनिवर-चरणो मे मेरी है शत-शत वन्दना ।
तन्मय होकर मैं करू नित प्रात उठ अभिवन्दना ॥

सतयुगी, मुनि हेमजी, मुनि वेणी, मुनिवर हेम रे ।
मुनि स्वरूप, कालू बडे, सभी मुनि मगन सप्रेम रे ॥८६॥

तेरापथ के स्तम्भ हैं, मुनि फतहचन्द, धिरपाल रे ।
टोडर अगरचन्दजी, मुनि उगम, जयान दयाल रे ॥८७॥

अमीचंद, ऋषि भीमजी, मुनि राम और शिव स्वामरे ।
कोदर तपसी आदि का शुभ नाम सदा विश्राम रे ॥८८॥

हीर, उभय पीथल मुनि, मोतीजी, मुनि वर्धमान रे ।
दीप, अनोप'रु, खूबजी, मुनि मोड, चोथ गण-शान रे ॥८९॥

श्याम, राम भाई युगल, मुनि अखयराम, सुखराम रे ।
छजमल, दुलीचन्दजी, शिव, शम्भू, मुनिवर राम रे ॥९०॥

मुनिवर श्रीरणजीतजी, मुनि वच्छराज'रु हुलास रे ।
वृद्धिचन्द तपसी बड़े, मुनि सुख का सुख में वास रे ॥९१॥

सतिवर-चरणों में मेरी है शत-शत वन्दना ।
तन्मय होकर मैं करु नित प्रातः उठ अभिवन्दना ॥

कुशलांजी, वरजू सती, हीरां, दीपां शुभ आव रे ।
सरदारांजी महासती, पाई अति ख्याति गुलाब रे ॥९२॥

नोलांजी, जेठां सती, श्रीकानकंवर प्रख्यात रे ।
झमकूजी साची सती, लाडां की अनुपम बात रे ॥९३॥

जय-जननी कल्लू सती, छोगां कालू की मात रे ।
ऋजुमना वदनां सती, जिनका जीवन अवदात रे ॥९४॥

गंगाजी, जेतां सती, हरखूजी अरु सिणगार रे ।
जोतांजी, दोलां सती, ज्ञानांजी ज्ञान-विहार रे ॥९५॥

हस्तूजी, रंभा उभय, मक्खू'रु मलूकां प्राज्ञ रे ।
सुन्दरजी, झूमां सती, चम्पा उत्कट वैराग्य रे ॥९६॥

अणचांजी ने है किया सबसे अति दुष्कर कार रे ।
महाभद्रोत्तर तप किया, भूरांजी ने स्वीकार रे ॥९७॥

पन्नाजी, मीरा मती, आर्या भत्तूजी आदि रे।
उग्र तपस्या-रत हैं, पाती हैं चित्त-समाधि रे ॥९८॥

साधु-वन्दना की बनी, यह विस्तृत गीति रसाल रे।
प्रतिदिन शुभमन जाप से, कटता कर्मो का जाल रे ॥९९॥

दो हजार चौबीस का है रतनदुर्ग चउमास रे।
मालाकारी क्षेत्र है, नव-नव है नित उल्लास रे ॥१००॥

फैल रही शुभ धर्म की यहाँ चारो ओर सुवास रे।
मुनि 'महेन्द्र' गुरुदेव के इंगित से सफल प्रवासरे ॥१०१॥